भारतीय नारी की अवधारणा और "छिन्नमस्ता"

(एम. फिल. की उपाधि हेतु प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध)

शोध निर्देशक
प्रो. मैनेजर पाण्डेय

शोधकर्त्री
पूनम कुमारी

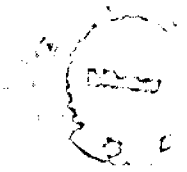

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 110067
1997

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI-110067

भारतीय भाषा केन्द्र
भाषा संस्थान

दिनांक : 21.7.97

प्रमाण -पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री पूनम कुमारी द्वारा प्रस्तुत लघु शोध-प्रबन्ध "भारतीय नारी की अवधारणा और छिन्नमस्ता" में प्रयुक्त सामग्री का इस विश्वविद्यालय अथवा किसी अन्य विश्वविद्यालय में इसके पूर्व किसी भी प्रदेय उपाधि के लिए उपयोग नहीं किया गया है।

यह लघु शोध प्रबन्ध सुश्री पूनम कुमारी की मौलिक कृति है।

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
अध्यक्ष
भारतीय भाषा केंद्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 67

प्रो. मैनेजर पाण्डेय
निर्देशक
भारतीय भाषा केंद्र
भाषा संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- 67

1997

GRAM : JAYENU TEL. : 667676, 667557 TELEX : 031-73167 JNU IN FAX : 91-011-6865886

प्राक्कथन

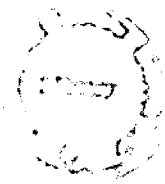

नारी पुरुष समता के सारे आदर्शों और आधुनिक प्रजातांत्रिक चेतना के बावजूद आज भी नारी शोषित और पीड़ित है । इसका मूल कारण वेदपुराण, संहितायें, सामाजिक ग्रंथों की उन शिक्षाओं में ढूंढा जा सकता है, जहाँ स्त्री को सर्वत्र अन्या की भूमिका प्रदान की गई है; साथ ही साथ आर्थिक पराधीनता भी इसका बहुत बड़ा कारण रहा है । इन धर्मग्रन्थों के अनुसार कोई भी स्त्री तभी सराहनीय है, जब वह माँ बेटी, बहन, पत्नी बनकर किसी न किसी रूप में पुरुष के अधीन हो ।

स्त्रियों को भी इस तरह शिक्षा-दीक्षा दी जाती है कि वे पुरुष को ही अपना रक्षक मानती हैं । किसी न किसी रूप में पुरुष ही हमारा रक्षक है, यह धारणा स्त्रियों के जातीय सामूहिक अचेतन में इतनी अधिक रची-बसी है कि स्त्रियाँ इससे भिन्न सोच ही नहीं पातीं । स्त्रियाँ अधीनता और शोषण को ही अपनी नियति मान लें इसके लिए पुरुषों ने समय-समय पर तरह-तरह का हथकंडा अपनाया है ।

तमाम सीमाओं के बावजूद परंपरावादी आचार-संहिताओं के विरूद्ध स्त्री मन का विद्रोह उसके एक स्वस्थ स्वाभाविक जीवन की उत्कट आकांक्षा को अभिव्यक्त करता है । "भारतीय नारी की अवधारणा और छिन्नमस्ता" इस लघु शोध प्रबन्ध में मैंने छिन्नमस्ता

का विवेचन विश्लेषण इसी सत्य को ध्यान में रखकर करने का प्रयास किया है ।

प्रस्तुत लघु शोध प्रबंध में प्रथम अध्याय "भारतीय नारी से संबंधित अवधारणाएँ" है । वेदपुराण, संहिताएँ, सामाजिक ग्रंथों ने नारी का चित्रण इस प्रकार से किया है कि हम उसे माँ, बेटी, पत्नी, देवी, बहन से परे एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में देख ही नहीं पाते । इन धर्म ग्रन्थों ने नारी की जो छवि हमारे सामने प्रस्तुत की है उसका स्पष्ट प्रभाव बाद के साहित्य पर भी पड़ा है । भारतीय समाज में स्त्रियों की वर्तमान स्थिति को निर्धारित करने में भी इन धर्मग्रंथों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है । प्रस्तुत अध्याय में इन्हीं तथ्यों को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है ।

द्वितीय अध्याय प्रभा खेतान की अन्य रचनाओं पर आधारित है । इसमें भी मूल रूप से उन्हीं बिन्दुओं को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है जो नारी शोषण और मुक्ति से संबंधित है ।

तृतीय अध्याय "छिन्नमस्ता" उपन्यास पर केन्द्रित है । मनुस्मृति और अन्य धर्मग्रंथों के आधार पर स्त्री की जो छवि हमारे मन में बनती है, उससे अलग तमाम संघर्षों को झेलती हुई छिन्नमस्ता की नायिका अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण करती है। उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व ने स्त्री संबंधी हमारी परंपरागत अवधारणाओं पर प्रश्नचिन्ह लगा दिया है ।

चतुर्थ अध्याय "छिन्नमस्ता" के शिल्प पर आधारित है । इसमें यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि - कथा की संरचना,

उसके पात्रों के चरित्र-चित्रण और भाषा की बनावट - इन तीनों के माध्यम से कथ्य को संप्रेषित करने में लेखिका को कहाँ तक सफलता मिली है । अंत में उपसंहार है ।

किसी भी शोध की कुछ सीमाएँ होती हैं और प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध के साथ भी यह बात सच है, यह स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है । हालांकि कोशिश यही रही है कि इससे उबर सकूँ ।

इस लघु शोध प्रबंध को पूरा करने में मेरे गाइड प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय ने जो परामर्श और सहयोग दिया है उसके लिए क्या कहूँ ? आभार और धन्यवाद जैसे औपचारिक शब्दों को कहकर मैं उऋण नहीं हो सकती । हाँ आगे भी इसी तरह के मार्गदर्शन और सहयोग की आकांक्षी अवश्य हूँ । इस दौरान मैं जब भी राँची गई डॉ॰ ऋता शुक्ला ने आवश्यक सहयोग दिया । उनकी मैं आभारी हूँ ।

मुन्ने भैया, निरंजन इन दोनों के लिए कुछ कहने से पहले ही मेरी आँखें भर आती हैं, शायद इनके सहयोग के बिना यह लघु शोध प्रबंध पूरा ही नहीं हो पाता । माँ-पिताजी तथा घर के अन्य सदस्यों के स्नेह और प्यार ने ही मुझे यहाँ तक पहुँचाया है । साथ ही विश्वविद्यालय के अन्य मित्रों पूनम श्रीनेत, विजया, चंद्रशेखर दुबे, शिव, राजेश सुमन, राजीव रंजन, सब्य साचिन, प्रमोद सिंह ने अविस्मरणीय सहयोग दिया है ।

8 जुलाई, 1997

— पूनम कुमारी

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ संख्या
प्राक्कथन	....	क - ग
प्रथम अध्याय	- भारतीय नारी से संबंधित अवधारणाएँ	1 - 15
	1. धार्मिक ग्रंथों विशेषत: मनुस्मृति में नारी से संबंधित विचार ।	
	2. साहित्य विशेषत: भक्तिकालीन और आधुनिक साहित्य में नारी	
	3. समाज में नारी की स्थिति और समकालीन महिला-लेखिकाओं के साहित्य में नारी	
द्वितीय अध्याय	- प्रभा खेतान की अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय	15 - 48
तृतीय अध्याय	- नारी संबंधित परंपरागत अवधारणाओं से छिन्नमस्ता का विभेद	49 - 61
	1. छिन्नमस्ता की नायिका द्वारा मजबूरीवश परंपराओं और रीति-रिवाजों का निर्वाह	
	2. परंपराओं के बंधन को तोड़कर नायिका का अपने लिए स्वतन्त्र जमीन की तलाश और संघर्ष	

चतुर्थ अध्याय - छिन्नमस्ता का शिल्प वैशिष्ट्य 62 - 73

1. छिन्नमस्ता के शिल्प-पक्ष को लेकर उठे विवादों का उल्लेख और उनके समाधान का प्रयास

2. छिन्नमस्ता का शिल्प वैशिष्ट्य - फ्लैश बैक टेकनिक, काव्यात्मक भाषा

3. चरित्रों के माध्यम से कथ्य को संप्रेषित करने का प्रयास

4. मन के अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण

उपसंहार ..... 74 - 79

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची ..... 80 - 83

******

प्रथम अध्याय

भारतीय नारी से संबंधित अवधारणाएँ

1. धार्मिक ग्रंथों विशेषत: मनुस्मृति में नारी से संबंधित विचार ।

2. साहित्य विशेषत: भक्तिकालीन और आधुनिक साहित्य में नारी ।

3. समाज में नारी की स्थिति और समकालीन महिला-लेखिकाओं के साहित्य में नारी ।

.....

"वह दुनिया को बदलने से नहीं अपने पुनर्मूल्यांकन से शुरूआत कर सकती है । यह एक आयाम है जहाँ उसे किसी यूटोपिया का नक्शा तो नहीं मिलेगा, लेकिन वहाँ वे इस गतिविधि के कारण और प्रेरित करने के कारण पा सकती है ।"[1]

— जरमेन ग्रीयर

पुरुष और स्त्री समाज निर्माण के दो परस्पर पूरक तत्व हैं । पर समाज संचालन में एक की सक्रियता और दूसरे की बाधता क्यों । यह बाधता मानव जीवन के सतत प्रवाह में भले ही कोई गतिरोध पैदा न करे, लेकिन उसे कुंठित अवश्य करती है । "नारी" इस एक शब्द को ध्यान में लाते ही इससे संबंधित अनेकों अत्यन्त परस्पर विरोधी चित्र हमारे सामने उपस्थित होते हैं - देवी, शक्ति, विदुषी, पत्नी, माँ, पुत्री, नीच, अबला, कुलटा, माया, वेश्या - नारी सम्बन्धी इन परस्पर विरोधी अवधारणाओं के सृजन में हमारे शास्त्रों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है । क्योंकि मनु-स्मृति और अन्य धर्मग्रंथों का भारतीय समाज और संस्कृति को ढालने में महत्वपूर्ण हाथ रहा है । आज भी स्त्री को अपने वश में रखने के लिए उसके शोषण और दमन की परंपरा को बरकरार रखने के लिए "मनुस्मृति" की पंक्तियाँ और रामचरितमानस के दोहे सुनाए जाते हैं । यथा —

"स्वां प्रसूति चरित्रं च कुलमात्मानमेव च
स्वं च धर्म प्रयत्नेन जायां रक्षन् हि रक्षति ।"[2]

अर्थात् सब पुरुषों को चाहिए कि अपनी स्त्रियों को स्वतन्त्र न होने दें, किसी प्रकार विषयों में आसक्त होने पर भी उन्हें अपने वश में रखे कुमार अवस्था में पिता रक्षा करता है, युवा अवस्था में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र स्त्री की रक्षा करता है, स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है साथ ही —

"स्वभाव एष नारीणां नराणा मिह दूषणम् "[3] अर्थात् इस लोक में पुरुषों को विकारग्रस्त कर देना - यह नारियों का स्वभाव है ।

इस प्रकार ऋग्वेद में कहा गया है —

"न वै स्त्रैणानि सख्यानि
सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ।"[4]

अर्थात् स्त्रियों से मित्रता करना व्यर्थ है, क्योंकि उनका हृदय भेड़िए के समान है ।

इसी प्रकार भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के नवें अध्याय के बत्तीसवें श्लोक में कहा है कि - स्त्रियों की उत्पत्ति पाप योनि से हुई है —

"मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येपि स्यु: पापयोनय: ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेपि यान्ति परां गतिम् ।।"[5]

ऐसे अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं । इन उदाहरणों में हजारों सालों से चले आते पुरुष संस्कार और सोच का (नारी के प्रति) सार छिपा हुआ है । देवी अथवा दासी गृहणी अथवा कुलटा, सहचरी अथवा वेश्या

नारी को ये परस्पर विरोधी रूप देकर - "आदमी ने औरत की जिस एक चीज को मारा कुचला या पालतू बनाया है वह है उसकी स्वतंत्रता । आदमी हमेशा से नारी की स्वतंत्र सत्ता से डरता रहा है और उसे ही बकायदा अपने आक्रमण का केन्द्र बनाया है ।"[6]

भक्तिकालीन कवियों के नारी संबंधी धारणाओं के निर्धारण में - शास्त्र और लोकजीवन में अपनी आँखों से देखी सुनी जाने वाली स्त्रियों का जीवन - इन दोनों की केन्द्रीय भूमिका है । तुलसीदास कहते हैं कि —

"सहज अपावनि नारि पति सेवत
सुभ गति लहई ।"[7]

इस प्रकार स्त्री को जन्म से ही अपवित्र मानने में वस्तुत: शास्त्रों की नारी संबंधी धारणाओं की ही प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है । दूसरी ओर अपने आस-पास जिस स्त्री को तुलसीदास देखते हैं वह तमाम बंधनों से जकड़ी हुई है, जिसके लिए सुख की कल्पना सपने में भी संभव नहीं —

"कत विधि सृजी नारि जग माहीं
पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं ।"

यहाँ तुलसीदास की शास्त्र सम्मत नारी संबंधी धारणाओं पर प्रत्यक्ष दर्शन अथवा अनुभूति भारी पड़ जाती है और वे नारी की जन्म-जात पराधीनता का दर्द महसूस करते हैं ।

"मसि कागद छुयो नहिं, कलम गह्यो नहिं हाथ" - कहने वाले कबीर की नारी संबंधी धारणा भी शास्त्र और प्रत्यक्ष अनुभव के अंतर्विरोध से ग्रस्त है । स्त्री प्रेम की निश्छलता और पवित्रता के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर ही उन्होंने परमात्मा के प्रति अपना प्रेम और समर्पण व्यक्त करने के लिए "पत्नी" अथवा "माता" का रूप ही चुना है - "हरि मोर पिऊ मैं राम की बहुरिया" अथवा "हरि जननी मैं बालक तोरा ।"

दूसरी ओर स्वयं गृहस्थ होते हुए भी स्त्री मात्र को साधक की साधना में अवरोधक मानते हैं । स्त्री संबंधी शास्त्र सम्मत धारणाएँ कहीं न कहीं उनके चेतन अवचेतन में विद्यमान हैं । तभी वे कहते हैं —

"नारी की झाईं पड़त अन्धा होत भुजंग
कबिरा तिनकी कौन गति जे नित नारी संग ।"

प्रश्न उठता है पुरुषों का, वह कौन-सा मनोविज्ञान है जिसमें शास्त्र सम्मत व्यवस्थाओं के विरोध में खड़ा हुआ व्यक्ति भी स्त्री संबंधी अपनी मान्यताओं के संदर्भ में उसी से प्रेरणा ग्रहण करता है ।

निस्संदेह सूरदास की स्त्री संबंधी मान्यताएं अन्य भक्त कवियों (तुलसी, कबीर, जायसी) से भिन्न है, क्योंकि सूरदास मूलत: प्रेम के कवि हैं और प्रेम किसी बंधन को नहीं मानता । स्त्री क्या है ? अथवा उसे कैसा होना चाहिए संभवत: इसकी स्पष्ट व्याख्या

सूर के काव्य में नहीं है, लेकिन स्त्री स्वतंत्र्य के एक पक्ष प्रेम के संदर्भ में उनकी गोपियों का सहज स्वतंत्र और तेजस्वी रूप मिलता है ।

सामंती समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिये हैं : पत्नी, रखैल और वेश्या और सिर्फ दो रूपों में देखा है - देवी अथवा दासी । मीरा ने इन सब परम्परागत रूपों को अस्वीकार किया । इस प्रकार नारी अस्मिता की पहचान की पहली आवाज (हिन्दी काव्य में) हमें मीरा की रचनाओं में सुनाई पड़ती है । भक्ति के धरातल पर तथाकथित रूप से सबको समान माना गया है । फिर भक्ति के मार्ग पर चलने का निर्णय लेने और उस निर्णय पर सुदृढ़ रहने के कारण मीरा को क्यों कहना पड़ा - "तन की आस कबहूँ नहिं कीनो, ज्यों रण माँही सूरो ।" प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में - "मीरा की कविता में एक ओर सामंती समाज में स्त्री की पराधीनता और यातना की अभिव्यक्ति है तो दूसरी ओर उस व्यवस्था के बंधनों का पूरी तरह निषेध और उससे स्वतंत्रता के लिए दीवानगी की हद तक संघर्ष भी है । उस युग में एक स्त्री के लिए ऐसा संघर्ष अत्यंत कठिन था । लेकिन मीरा ने अपने स्वत्व की रक्षा के लिए कठिन संघर्ष किया ।"[8]

हिन्दी साहित्य में मीरा के बाद संभवत: भारतेन्दु ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर विचार करते हुए पुरुषों के समान ही उनके समान दर्जे की इच्छा व्यक्त की - नारी नर सम होहिं - और इस समानता को प्राप्त करने के लिए उन्होंने स्त्री शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया । "बाला बोधिनी" का प्रकाशन भारतेन्दु द्वारा स्त्री जनों के निमित किया गया । रामविलास शर्मा

ने"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ" में कहा है कि - सेलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट के बहाने भारतेन्दु ने विधवा विवाह के विरोधियों, अनमेल विवाह के हिमायतियों, पुरोहितों के अन्धे अनुयायियों और धार्मिक अंधविश्वासों को सच कहने वालों को कड़ी फटकार बतलाई है ।

निस्संदेह समय के साथ-साथ नारी संबंधी परम्परागत धारणाओं में कुछ परिवर्तन हुआ जिसकी स्पष्ट प्रतिध्वनि समसामयिक साहित्य में सुनी जा सकती है । साहित्य में नारी संबंधी धारणाओं में जो परिवर्तन हुआ वह आकस्मिक नहीं था । उन्नीसवीं सदी में जो सुधार आंदोलन आरंभ हुआ था, वह बीसवीं सदी के प्रथम चरण समाप्त होते-होते बहुत जोर पकड़ गया । नारी-शिक्षा में बड़ी तेजी से प्रगति हुई । सरकारी आंकड़ों के अनुसार 1900 में शिक्षा ग्रहण करने वाली लड़कियों की संख्या जहाँ चार लाख थी, वहाँ 1925 में यह संख्या उसकी तिगुनी अर्थात् बारह लाख तीस हजार छः सौ अट्ठानबे हो गई और 1935 तक जाते-जाते सात गुनी से भी ज्यादा हो गई ।

हिंदू धर्म शास्त्रों में व्यक्त स्त्री संबंधी धारणाएं आज भी जनमानस के नस-नस में व्याप्त है । ये धारणाएँ प्रगतिशील विचारधारा को भी प्रभावित किए बिना नहीं रहतीं । उदाहरणार्थ - उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द ने अपने काल की भारतीय नारी के यथार्थ को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । उन्होंने - "अपने सम्पादकीय लेखों और टिप्पणियों में नारी-शिक्षा, नारी-स्वतन्त्रता नारी अधिकार, स्त्री पुरुष के लिए वैवाहिक नियमों की समानता

तलाक आदि की वकालत की है ।"[9]

उक्त बातें के आधर पर प्रेमचन्द के नारी विषयक विचार अत्यंत आधुनिक प्रतीत होते हैं । पर उनके अनुसार - "भारतीय नारी सदैव कुलदेवी समझी गई है और उसे समाज में पुरुषों से ऊँचा पद प्राप्त है । ... उन्हें हर एक विषय में पुरुषों के समान अधिकार होना चाहिए, पर उनका विश्वास है कि देवियाँ केवल उन्हीं अधिकारों को स्वीकार करेंगी जो उनके हित में होगा ।"[10]

इस टिप्पणी से यह तो स्पष्ट नहीं होता कि नारियों का हित कहाँ है, पर यह जरूर आभासित होता है कि प्रेमचन्द के सामने भारतीय नारी का एक विशिष्ट आदर्श है, जो अंशत: शास्त्र सम्मत नारी संबंधी धारणाओं से प्रभावित है । प्रेमचन्द का नारी आदर्श संबंधी यह दृष्टिकोण उनके वैचारिक अन्तर्विरोध का परिचायक है जो उनके उपन्यासों में भी व्यक्त हुआ है । उदाहरणार्थ - गोदान में मेहता के भाषण से नारी आदर्श का जो रूप सामने आता है उसके अनुसार नारी देवी, माता त्याग और श्रद्धा की मूर्ति है । मेहता कहते हैं - "स्त्री को पुरुष के रूप में, पुरुष के कर्म में रत देखकर मुझे उसी तरह वेदना होती है जैसे पुरुष को स्त्री के रूप में स्त्री के कर्म करते देखकर ... संसार में सबसे बड़े अधिकार सेवा और त्याग से मिलते हैं और वह आपको मिले हुए हैं ।"[11] मेहता अन्यत्र कहते हैं - "नारी केवल माता है, और उसके उपरान्त वह जो कुछ है, वह सब मातृत्व का उपक्रम मात्र है ।"[12]

मेहता के इन विचारों में प्रेमचन्द का वैचारिक अन्तर्विरोध मिला हुआ है, क्योंकि प्रेमचन्द ने अपने किसी भी पात्र से इन विचारों का खंडन नहीं कराया है । स्पष्ट है कि प्रेमचन्द का परम्परागत नारी विषयक संस्कार उनकी विचारधारा को अंतर्विरोध ग्रस्त कर देता है । पर इससे उनके नारी और पुरुष के अधिकारों की समानता विवाह और सामान्य जीवनचर्या में नारी की स्वतन्त्रता तलाक आदि का समर्थन का महत्व कम नहीं हो जाता ।

प्रेमचन्द से अलग जैनेन्द्र के उपन्यासों में नारी को एक भिन्न दृष्टि से देखा और चित्रित किया गया है । जैनेन्द्र के यहाँ हम नारी की छवि शास्त्र सम्मत धारणाओं से अलग, मानवीय दुर्बलताओं से युक्त एक व्यक्ति के रूप में पाते हैं । नारी ऐसी है अथवा उसे ऐसा होना चाहिए, इससे अलग जैनेन्द्र ने नारी मनोभावों का सूक्ष्म और बेबाक चित्रण अपने उपन्यासों में किया है । जैनेन्द्र ने नारी-जीवन के तथाकथित आदर्शों को किनारे रखकर एक व्यक्ति के रूप में नारी मन की शंकाओं, उलझनों और गुत्थियों का चित्रण किया है । अपनी इसी विशेषता के कारण जैनेन्द्र के नारी पात्र अपने समय से काफी आगे नज़र आते हैं । समय के तेजी से बदलते जाने के बावजूद आज भी हम अपनी नारी संबंधी परम्परागत धारणाओं के कारण जिन बातों को सहजता से स्वीकार नहीं कर पाते हैं, उन्हें आज से पचास-साठ साल पहले सोचना और लिखना जैनेन्द्र की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विशेषता रही है ।

यदि हम व्यवहारिक जिंदगी में अपने आस-पास की स्त्रियों के रहन-सहन पर ध्यान दें तो पाएँगे आज भी उनका जीवन तभी आदर्श

माना जाता है, जब वह शास्त्र सम्मत धारणाओं के अनुकूल हों । जबकि हिंदू धर्मशास्त्रों ने स्त्रियों को समस्त मानवोचित अधिकारों से वंचित कर रखा था । यहाँ हिंदू स्त्री की एकमात्र उपयोगिता कामेच्छा की पूर्ति, सन्तानोत्पत्ति, पति और परिवार के अन्य सदस्यों की सेवा तथा गृहकार्य के साधन के रूप में थी । स्त्रियों की दशा और स्थिति में सुधार के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं । नारी जाति के लिए इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है कि आज भी बालिका शिशु की हत्या यदा-कदा अखबार की सुर्खियों में छायी रहती है, साथ ही भ्रूण-परीक्षण और गर्भपात की रिपोर्टों से पता चलता है कि आज भी 99 प्रतिशत गर्भपात बालिकाओं के भ्रूण के होते हैं । यद्यपि स्वतंत्रता पूर्व बने कानून में ही शिशु-हत्या को अवैध घोषित किया गया था §1795 का विनियम संख्या 21 और 1804 का विनियम संख्या 3§ ।

आज भी हमारे समाज में रूपकुंवर जैसी स्त्रियाँ जलाई जा रही हैं और इस कुकृत्य की प्रशंसा करने वालों की भी कमी हमारे समाज में नहीं है, क्योंकि वेदों, स्मृतियों और पुराणों में लिखित नारी आदर्श की बातें हमारे यहाँ ब्रह्म वाक्य की तरह मानी जाती हैं । वेद, स्मृति और पुराणों में सहमरण का स्पष्ट उल्लेख मिलता है । यथा —

"नारी भर्तारमासाद्य यावत्र दहते तनुम्
तावत्र मुच्यते सा हि स्त्रीशरीरात् कथ चन ।"[13]

अर्थात् पति में भलीभाँति लीन होकर जबतक नारी उसके साथ सहमृता (सती) नहीं होती अपनी भिन्न सत्ता को भस्म नहीं कर देती तबतक स्त्री शरीर से छूटकर मोक्ष को नहीं प्राप्त होती ।

इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए 1829 का बंगाल सती विनियम संख्या-17 में विधवाओं के सती होने या आत्मदाह को अवैध घोषित किया गया था । इसी प्रकार दहेज निषेध अधिनियम 1961 में ही बना, जिसकी धारा 3 और 4 के अधीन (एक) दहेज देने या लेने के लिए और; (दो) दहेज माँगने के लिए दंड की व्यवस्था की गई है । परंतु आज भी दहेज रूपी लोभ की आग में हजारों स्त्रियाँ जलाई जा रही हैं अथवा अनेकों आजीवन अविवाहित रहने को अभिशप्त हैं ।

स्त्रियों की स्थिति और दशा को यदि हम गहराई से देखें तो पाएँगें कि - "संविधान ने स्त्रियों को चाहे कितने ही अधिकार दिए हों, वे इनका पूरा उपयोग नहीं कर पातीं । उनके वैधानिक अधिकारों और रूढ़िगत सामाजिक अधिकारों में जमीन-आसमान का अंतर है । घर-परिवार, रिश्तेदारी, धर्म परंपरा के नाम पर स्त्रियों का दायरा सीमित किया जाता है, जिससे न तो वे अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर पाती हैं और न ही समाज को अपना पूरा योगदान कर पाती हैं, और इन सामाजिक बाधाओं को पार करने के लिए जो कानून हैं, उनकी जानकारी तक अधिकांश स्त्रियों को नहीं है । यहाँ तक कि शहरी शिक्षित महिलाएं भी प्रायः इनसे बेखबर हैं ।"[14]

भारतीय समाज में शास्त्रगत धारणाओं और परम्पराओं से जकड़ी हुई हिंदू नारी की जो स्थिति है और उस स्थिति में पुरुष की क्या भूमिका है - इस संदर्भ में नीत्शे की निम्न पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं - "एक बार जरथुस्त्र एक बुढ़िया से पूछता है, - "बताओ स्त्री के बारे में क्या सच्चाई है ? वह कहती है, - बहुत-सी सच्चाइयाँ ऐसी हैं जिनके बारे में चुप रहना ही बेहतर है । हाँ, अगर तुम औरत के पास जा रहे हो तो अपना कोड़ा साथ ले जाना मत भूलना ।"[15]

उक्त सभी प्रसंगों में वर्णित नारी का संबंध हिन्दू नारी से ही है, क्योंकि भारत में ईसाई, मुसलमान स्त्रियाँ भी हैं जिनकी समस्याएँ अलग हैं । विवेच्य उपन्यास "छिन्नमस्ता" की नायिका का संबंध भी हिन्दू नारी से है अत: यही केन्द्र में रखा गया है ।

परंपरागत धारणाओं संस्कारों और नयी मानसिकता के द्वन्द्व के बीच पिसती हुई मध्यवर्गीय नारी ही, आज की समकालीन महिला लेखिकाओं का प्रमुख थीम है । इन लेखिकाओं ने यह दिखाने की कोशिश की है कि - किस प्रकार नारी झूठे संस्कारों, मानमर्यादाओं तथा परंपरागत मूल्यों और आदर्शों के बीच जकड़ दी गई है अथवा अज्ञानता की वजह से स्वयं जकड़ी हुई है तथा इन रूढ़ियों को तोड़ कर बाहर निकलने में उसे कितने संघर्षों का (सामाजिक और व्यक्तिगत दोनों ही) सामना करना पड़ता है । इस प्रकार नारी का एक ऐसा वर्ग भी उभर कर सामने आया है जो पुरुष सत्ता द्वारा अपने हित में बनाए गये मूल्यों और आदर्शों को तोड़कर अपने अधिकारों के प्रति सजग हो चुका है । और यह सजगता और पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की

कामना ही है कि आज का पुरुष उसे पहले की अपेक्षा ज्यादा अविश्वास की दृष्टि से देखता है । इस संदर्भ में - "जानलेवा बंधनों और मुक्ति कामना के द्वन्द्व ने उसके मनोविज्ञान को कहीं भी सहज नहीं रहने दिया है और चतुराई से स्थिति संभालना, खतरों को दूर से सूंघना, असुरक्षा के जोखिम को बचाना उसकी प्रकृति बना दी गई है जिसके चलते वे लोकोक्तियाँ जन्म लेती रही हैं जहाँ वह चालाक, खतरनाक, अविश्वसनीय और कामांध सिद्ध की जाती है ।"[16]

नारी की परंपरागत मान्यताओं, धारणाओं से अलग "छिन्नमस्ता" की नायिका प्रिया तमाम विषमताओं के बावजूद अपनी एक अलग पहचान बनाती है जहाँ उसे एक व्यक्ति (प्रिया) एक रूप में जाना जाता है किसी की पत्नी, बहू अथवा पुत्री के रूप में नहीं । इस प्रकार - "यह उपन्यास प्रिया नामक एक ऐसी नारी का आख्यान है जो निरंतर शोषित है - समाज की जर्जर मान्यताओं से भी और पुरुष की आदिम भूख से भी, टूट जाने की हद तक लेकिन वह टूटती नहीं, बल्कि शोषक शक्तियों के लिए चुनौती बनकर एक नई राह पर चल पड़ती है और यहीं से आरंभ होती है उसकी बाहरी और आंतरिक यात्राएँ, संघर्षों का एक अटूट सिलसिला । बीच-बीच में वह शिथिलता अनुभव जरूर करती है, लेकिन उसके सामने एक लक्ष्य है - समाज की जिन बर्बर मर्यादाओं और शक्तियों के सामने एक दिन वह मेमने की तरह मिमयाती रही थी, वे देखें कि नारी सदा ऐसी ही निरीह नहीं रहेगी । और सचमुच प्रिया उभरती है अपनी निरीहता से । अपनी खोई अस्मिता को पुनः प्राप्त करके वह एक

सबल नारी के रूप में उपस्थित होती है । संक्षेप में कहें, तो प्रिया के माध्यम से लेखिका ने नारी स्वातंत्र्य की भावना का वास्तविक रूप उद्‌घाटित किया है ।"[17]

इस प्रकार निस्संदेह प्रिया ने भारतीय नारी की बनी बनाई अवधारणाओं मान्यताओं को तोड़ा है, परंपरागत विसंगतियों और बिडम्बनाओं से बाहर निकलने का सफल प्रयास किया है ।

.....

संदर्भ

1. मासिक "हंस", अंक - नवम्बर-दिसंबर, 1994, प्रकाशक - अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰ में अशोक गुप्ता के लेख "यह प्रश्न अवांतर नहीं है" से उद्धृत, पृ॰-39.

2. "कल्याण", नारी अंक (बाईसवें वर्ष का विशेषांक) प्रकाशन - गोरखपुर, गीता प्रेस, पृ॰-182.

3. वही, पृ॰-90.

4. वही, पृ॰-90.

5. श्रीमद्भगवद्गीता; प्रकाशक - गोविन्द-भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰-140.

6. औरत होने की सज़ा - लेखक - अरविंद जैन, प्रकाशक - विकास पेपर बैक्स, मेन रोड, गाँधी नगर दिल्ली,31, पृ॰-9.

7. श्रीरामचरितमानस - रचनाकार - गोस्वामी तुलसीदास, प्रकाशक - गोविन्द भवन कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ॰-537.

8. भक्ति आंदोलन और सूरदास का काव्य - लेखक - मैनेजर पाण्डेय, प्रकाशक - वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993, पृ॰-27.

9. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द - लेखक - सत्यकाम, प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण,

10. आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचन्द - लेखक - सत्यकाम, प्रकाशक - राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, प्रथम संस्करण - 1994, पृ.-125.

11. गोदान - प्रेमचन्द, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., प्रथम संस्करण 1988, पृ.-163.

12. वही, पृ.-166.

13. कल्याण, नारी अंक (बाईसवें वर्ष का विशेषांक) प्रकाशन - गोरखपुर, गीताप्रेस, पृ.-233.

14. भारतीय नारी - दशा-दिशा" लेखिका - आशा रानी व्होरा, प्रकाशक - नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983, पृ.-126.

15. औरत होने की सज़ा - लेखक - अरविंद जैन, प्रकाशक - विकास पेपर बैक्स, मेन रोड, गाँधी नगर, दिल्ली-31, पृ.-9.

16. मासिक "हंस", प्रकाशक - अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, अंक - नवम्बर-दिसंबर 1994 में राजेन्द्र यादव के सम्पादकीय से उद्धृत, पृ.-9.

17. "छिन्नमस्ता" - प्रभा खेतान, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 1993, के फ्लैप नं.-2 से उद्धृत ।

.....

द्वितीय अध्याय

प्रभा खेतान की अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

.....

प्रभा खेतान बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न लेखिका हैं । कविता, कहानी, उपन्यास, चिन्तन, अनुवाद, यात्रा संस्मरण आदि साहित्य की एकाधिक विधाओं पर उन्होंने लेखनी चलाई है । अभी तक प्रकाशित उनकी कृतियाँ इस प्रकार हैं —

1. काव्य संग्रह

अपरिचित उजाले	1981
सीढ़ियां चढ़ती हुई मैं	1982
एक और आकाश की खोज में	1985
कृष्ण धर्मा मैं (लम्बी कविता)	1986
हुस्नाबानों और अन्य कविताएं	1987
अहल्या (लम्बी कविता)	1988

2. उपन्यास

आओ पे पे घर चलें	1989
तालाबन्दी	1991
छिन्नमस्ता	1991
अग्नि संभवा	1992

3. अनूदित

स्त्री : उपेक्षिता	1988
सांकलों में कैद क्षितिज	1988

4· चिन्तन

सार्त्र का अस्तित्ववाद	1984
सार्त्र : शब्दों का मसीहा	1985

5· यात्रा संस्मरण

उसे रवि शंकर का कैसेट चाहिए	1988

इस अध्याय में प्रभा खेतान के चिन्तन ग्रंथ "सार्त्र का अस्तित्ववाद (1984) और सार्त्र : शब्दों का मसीहा (1985) को छोड़ कर शेष समस्त कृतियों की संक्षिप्त चर्चा की जा रही है ।

1· काव्य संग्रह

अपरिचित उजाले (1981)

अपरिचित उजाले प्रभा खेतान का प्रथम काव्य संग्रह है । मानव मन विशेषत: युवा स्त्री मन की विविध अनुभूतियों को उद्गारित करने वाली ये कविताएँ अत्यन्त सहज हैं - भाषा, भाव और संरचना तीनों ही दृष्टियों से । जैसा कि उक्त काव्य संग्रह के प्रारंभ में "कविता मेरी जरूरत है" के अंतर्गत प्रभा खेतान ने लिखा है - "कविता लिखना कितना सहज हो जाये यदि हम उसे केवल एक माध्यम मानें - मन के भावों को प्रकट करने का । जैसे हम आनन्द में सहज नाच लेते हैं, गा लेते हैं, वैसे ही कभी-कभी सहज सरल कविताएं भी लिखी जाती हैं ।"[1]

इस संग्रह की कविताओं में बिम्ब योजना, अर्थ की लय या स्वयं से साक्षात्कार की काव्यरूढ़ियों से अलग कवयित्री के आन्तरिक सत्य

और उसकी अस्मिता के सक्रिय क्रियाशील अन्वेषण से हमारा साक्षात्कार होता है । आज का व्यक्ति जिस दोहरी जिन्दगी को जी रहा है, जिस यांत्रिक जीवन की ऊब से संत्रस्त है, जिस भीड़ के बीच अकेलेपन का अहसास लेकर अपने अस्तित्व के लिए संघर्षरत है - उसका स्पष्ट वर्णन ईनपंक्तियों में मिलता है । यथा -

"कैसा अजीब यह अकेलापन
जो लोगों की भीड़ में
हाथ बाँधे खड़ा रहता, एक विनयी मेजबान-सा
x x x
मुझे अब इस अकेलेपन पर
चिढ़ नहीं
शर्म आती है ।"[2]

स्त्री पराधीनता और शोषण के प्रति आक्रोश और उससे मुक्तिकामना की प्रबल आकांक्षा इन कविताओं में बहुत स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता । फिर भी स्त्री के वस्तु रूप में परिवर्तित हो जाने का दर्द इन कविताओं में भी है । हाशिये पर खड़ी स्त्री की पराधीनता का शिकंजा उपभोक्तावादी संस्कृति के हमले से और अधिक कस गया है -

"तुम चाहते हो
मैं बनूँ तुम्हारे ड्राइंग रूम का कालीन
पर्दे, सोफा, या बेड-कवर
फैली रहूँ बिस्तर पर - "[3]

इस संग्रह में कई कविताओं का स्वर रोमानी है । कई कविताएं प्रकृति रमणीय वन प्रांतों, नदी, झरना आदि से भी संबंधित हैं ।

वस्तुत: "अपरिचित उजाले" शीर्षक अपने आप में एक बिम्ब है, जो नारी पराधीनता और शोषण के खिलाफ अस्पष्ट ही सही पर आवाज़ उठाता है और स्त्री को उससे मुक्त होने का संदेश देता है । इनमें से कई कविताओं को शीर्षक के इस बिम्ब से जोड़कर देखा जा सकता है -

"ये लोग कौन हैं
जिन्होंने निचोड़ ली है हमारी सारी शक्ति
आखरी बूँद तक
नशे में बदहवास हमें
अपने जश्नों का
पुर्जा बनाकर छोड़ दिया है
हम भूल गये हैं कि
हमारे पास भी हथियार है
सिर्फ उन्हें तेज करना है ।"[4]

इन कविताओं की भाषा सहज और सरल है । इन कविताओं के बिम्ब प्रतीक अत्यंत सजीव विषयगत् एवं आत्मीय हैं, इसीलिए ये कविताएँ सहज संप्रेषणीय हैं ।

सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं (1982)

यह प्रभा खेतान का दूसरा काव्य संग्रह है । इस संग्रह में प्रभा खेतान ने लिखा है - "मेरी कविताएँ मेरे अपने अस्तित्व से शुरू होती हैं । मैं जो कुछ भी हूँ ··· मेरा सोचना या लिखना उससे बाहर नहीं जा सकता । अपने से बाहर जाने में मेरी रुचि भी नहीं ।"[5] तथापि इस संग्रह की कविताओं का एक प्रमुख विषय समाज सापेक्षता भी है । इसमें अपने आसपास से लेकर अपने देश अपने वातावरण तथा बाह्य जीवन की विसंगतियों से जूझने की प्रवृत्ति है । आम आदमी के राग, विराग उसकी दीनता तथा जिजीविषा के कई चित्र इन कविताओं में हैं । इसी के अंतर्गत कवयित्री अमीतुल्ला का जिक्र करती है । अमीतुल्ला उस मेहनतकश मजदूर का प्रतिनिधित्व करता है जो अपनी तमाम सेवाओं के बावजूद भी गुमनामी के अंधेरे में खो जाता है -

"यह ठीक है कि
न कहीं
तुम्हारे नाम से
पत्थर खुदे
न कोई शहर बना
न तुम्हें कोई
विरासत मिली ···
जबकि
दुनिया की तमाम चीजों में
तुम रंग-रूप और गन्ध बन
घुले हुए हो ।"[6]

कई कविताएँ प्रेम संबंधों पर हैं, जीवन के अंतरंग का पर्यवेक्षण करती हुई । हालांकि इन कविताओं में कहीं-कहीं उन अनुभूतियों का दोहराव दिखाई पड़ता है, जो "अपरिचित उजाले" की प्रेम संबंधी कविताओं में अभिव्यक्त हैं । यथा —

"तुम मेरे पास
इसलिए नहीं आये
कि मैं कहीं उधार न माँग लूँ
तुम्हारी जिंदगी का हिस्सा
मुझे इसकी जरूरत नहीं
ऐसा करना
कि जब तुम लौटो तब
साथ ले जाना
मेरे गुलाब, जूही
मैं जिन्दगी - जिन्दगी भर
प्रतीक्षा कर सकती हूँ
गयी हुई
लहरों के लौटने की ।"[7]

DISS
0,152,3,N4291,3:g(Y15)
152N7

प्रस्तुत कृति का नामकरण ही इस बात का आभास देता है कि नारी जीवन के विविध आयामों से गुजरते हुए, कैसे एक स्त्री अपनी स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए संघर्षरत है ।

TH-6755

एक और आकाश की खोज में {1985}

प्रभा खेतान ने लिखा है - "मैं जो कुछ भी लिख रही हूँ वह बहुत महत् न भी हो तब भी अपने आप में मेरे लिए उसका महत्व है । जब मैं लिखती हूँ तब अपने आपको पेश करती हूँ - जैसा भी उसी तरह - हम सब कुछ लिखते हैं तो वह लिखना सबसे पहले हमें अपने सामने अपने आपको पेश करना होता है ।"[8] परन्तु उक्त काव्य संग्रह में प्रभा खेतान ने अपने आसपास की सूक्ष्म वस्तुओं को हवा में बहती गन्ध को, मौसमों में रचे-बसे बेआवाज परिवर्तनों को, चिड़ियों की चहचहाहट को तितलियों की मस्ती को, बरसात की सरसता और सोनमछली को - अपनी कविताओं का विषय बनाया है । यथा -

"चहक कर उड़ते
पाखियों की कतार देख
मस्ती में गुनगुनाने लगते
ढेर के ढेर पत्ते
झरने लगती - शाखें
फूल भरी, पीले पात भरी ।"[9]

निजता से बाहर निकल कर प्रकृति में विचरण करती हुई भी कवयित्री जिन्दगी के अन्तिम सत्य को नहीं भूलती । पतझर में मुरझाये पत्ते को देखकर वह अनायास ही कह उठती है -

"वसन्त का जन्मा
हर कोमल पत्ता
अब भोग रहा
अपने होने का सच ।"[10]

स्त्री होने की त्रासदी यहाँ भी है । जहाँ तमाम शोषण और बंधनों के साथ उसे वस्तु से ज्यादा कुछ नहीं समझा जाता है । वर्तमान स्थिति की कड़वी सच्चाई और उनसे मुक्ति का संकल्प पूर्ववत दो काव्य-संग्रहों की भांति विद्यमान हैं । यथा —

"मैंने अपने को
पहनाया तुम्हारे पांवो में
जूती बन,
बिछी बिस्तरे पर
चादर बन,
कभी टँगी खूँटी पर
तुम्हारा मुखौटा बन
मैं बनी वस्तु
तुम रहे भोक्ता ।"[11]

दूसरी ओर मुक्ति का दृढ़ संकल्प —

"मैंने नाप लिये हैं हजारों आकाश
फिर भी
एक और आकाश की खोज में चल पड़ी हूँ ।
मैं सब सह लूँगी,
क्योंकि आज मेरे
खून का हर कतरा
आग के शोलों सा
आतुर है
अपनी काली भविष्यवाणियों
को लोहित करने ।"[12]

कृष्ण धर्मा में (1986)

कृष्ण धर्मा में प्रभा खेतान की एक लम्बी कविता है । इसमें प्रभा खेतान ने स्वयं को कृष्ण धर्मा माना है । उन्हीं के शब्दों में - "पूरी रचना के दौरान मैं आज भी चुनौतियों के बीच अपने को कृष्ण की साझीदार पाती रही हूँ - हास उल्लास के क्षणों से लेकर महाभारत के महासंहार तक के प्रकरणों के बीच, केलि-कुंजों से लेकर प्रभास-तीर्थ तक की रचना यात्रा के बीच । शायद साझेदारी के इस एहसास ने ही मुझे स्थूल कथा-सूत्रों से बचाकर चेतना के स्तर पर कृष्ण से जोड़ा है, कृष्ण धर्मा बनाया है ।"[13]

यह सच है कि कोई भी रचना तभी प्रासंगिक हो पाती है, जब वह अपने समय और समाज की वास्तविकताओं से गहराई से जुड़ी हो । इस कविता में भी अपने वर्तमान के अनुभवों, निजी सन्दर्भों से निकले सार्वजनिक और वस्तुजगत के यथार्थ से साक्षात्कार का प्रयास है —

"मर चुके
सारे भाव
बासी पड़ चुकीं सारी आसक्तियाँ
ताजी हैं
पहले से आखिरी शब्द तक
एक लम्बी उदासी से भरी मेरी कविता ।"[14]

प्रभा खेतान की प्राय: सभी रचनाओं में एक ऐसी छोटी लड़की का जिक्र आता है, जिससे चलना अथवा तैराना नहीं आता और लेखिका उसे बड़ी आत्मीयता के साथ चलना,दौड़ना अथवा तैरना सिखाती है । वस्तुत: ऐसे बिम्बों में स्वयं के साथ सम्पूर्ण स्त्री जाति की प्रगति की आकांक्षा व्यक्त है । इस कविता में भी —

"मुझे याद आ रही
एक छोटी लड़की ...
जो मेरी उंगलियों को पकड़े
भय से ठिठक गयी थी पहली ही सीढ़ी पर
देखने लगी थी मेरी ओर असहाय
भर आया था
मेरा हृदय ... मैंने समझाया था उसे
इन्द्रधनुषी रंगों का महत्व
बताया था उड़ने का सुख
और तब
सीढ़ियाँ चढ़ने लगी थी वह मेरे साथ
चढ़ती चली गई और आज
इन्द्रधनुषी देहरी पर ठिठकी
कभी देख रही मेरी ओर
कभी नाप रही आकाश ।"[15]

"कृष्ण धर्मा में" कि वे पंक्तियाँ बहुत आकर्षित करती हैं, जिनमें नारायण को एक साधारण आदमी के रूप में सुख दु:खों से जूझते हुए दिखाया गया है । अर्थात् नारायण के ईश्वरीय चमत्कारों और

अनश्वरता से ज्यादा महत्व उनकी मानवीय संवेदनाओं तथा मनुष्य की सामान्य भूमिका निभाने की है । नारायण का यही वह स्वरूप है जहाँ प्रभा खेतान स्वयं को कृष्ण धर्मा पाती हैं । यथा —

"धीरे-धीरे केन्द्रित होती है रोशनी
देवता से हटकर
मूर्त देहधारी आदमी के ऊपर
नारायण ने
बार-बार पहचानी अपनी भूमिका
नर के माध्यम से
लगातार संघर्षरत इतिहास के भीतर

x x x

सोचती हूँ मैं
कितने मोहक होते कालिक-अनुभव
जिनके स्वाद के लिए
मूर्त होती रही आदमी के शरीर में
बार-बार तुम्हारी सत्ता ?
कितनी आकर्षक होती हैं
दुनिया के भोग की चाहें ।"[16]

हुस्नाबानों और अन्य कविताएँ (1987)

"हुस्नाबानों और अन्य कविताएँ" में संकलित प्रभा खेतान की कविताएँ व्यक्ति के निजत्व के बाहर अपने समय और समाज की वास्तविकता से व्यग्र बेचैन साक्षात् का ही परिणाम कही जा सकती है। यह अचानक नहीं हुआ है और महज रचनात्मक महत्वाकांक्षा के कारण ही नहीं हुआ है। इस बीच प्रभा खेतान का सम्पर्क यथार्थ के अधिक तीखे जटिल रूपों, स्थितियों और चरित्रों के साथ गहरा हुआ है और विभिन्न वर्गों के बीच घटित जीवन की त्रासदी की ओर उसके अंतर्विरोधों की ओर, दूसरे शब्दों में मानवीय नियति की विडम्बनापूर्ण वास्तविकता की ओर उनकी छीव इस रूप में गयी है कि कीव कर्म यथार्थ के प्रत्यक्ष सम्प्रेषण का उतना ही कारगर माध्यम लगने लगा है जितने कारगर माध्यम उपन्यास कहानियाँ या नाटक हो सकते हैं।"[17]

स्पष्ट है कि इस काव्य-संग्रह तक आते-आते कवयित्री, अपने निजी संघर्षों से बाहर निकल समाज की वास्तविकताओं से रू-ब-रू होने का सफल प्रयास करती है। सामान्य जनों की रोटी और घर की समस्या को "हुस्नाबानो" कविता में अभिव्यक्त किया गया है —

"हर आदमी का चेहरा
तवे पर सिंकती हुई रोटी
हर आदमी की पलकों पर
चिपकी हुई
रोटी ...
हाँ नानी
जानती हो तुम

अब्बा गये हैं दुबई
शाहों का घर बनाने
अब्बा गये हैं मोटी तनखा पर
गारा चूना ढोने
x x x
बस अब्बा अबकी तुम
बदल देना अपने बक्से को
एक छोटे से घर में ।"[18]

स्त्रियों पर भी अनेक कविताएं हैं । जैसे "मिसेज गुप्ता अकेली हैं, दो लड़कियां, "बड़ी अच्छी मेम साब" आदि । "बड़ी अच्छी मेम साब" में नौकरानी रत्ना और मेमसाब को समान्तर रखकर स्त्रीमात्र की नियति को दर्शाया गया है । "मेम साब" धन, वैभव, पति, बच्चे के बीच भी खुश नहीं । उसका बेटा रत्ना से कहता है —

"रत्ना, पापा खराब है
पापा भोत खराब है
आज भी
मम्मी रोती है, रत्ना
रोज रोती ।"[19]

दूसरी ओर रत्ना अपनी तमाम कोशिशों के बावजूद मेम साब को खुश नहीं रख पाती —

"कांपता रहता है तेरा हाथ
सूना रहता है दिमाग

कुछ का कुछ करती
जो नहीं करना
वही करती
बड़ी मुश्किल है तुम को सिखाना
पत्थर को मानुष बनाना
x x x

रत्ना सोचती है —

ऐसा क्यों ?
मालिकन का बाघिन गुस्सा
मुझे क्यों बना जाता है बकरी ।"[20]

इस प्रकार नौकर से लेकर मालिक तक, सड़क से महल तक, घर से रोटी तक, अस्तित्व की तलाश से अजनबीपन के अहसास तक, स्त्री की नियति और उसके संघर्षों तक - इन सब पर प्रभा खेतान की नज़र गई है ।

अहल्या (1988)

इस लम्बी कविता की पृष्ठभूमि में उस श्रापग्रस्त अहल्या की कथा है, जिसे उसके पति गौतम ऋषि ने पत्थर बन जाने का श्राप दे दिया था । वास्तव में झगड़ा यहाँ इन्द्र और गौतम के बीच था । इन्द्र को डर था कि गौतम अपने तपोबल से उनकी सत्ता प्राप्त कर

लेंगे । अत: इन्द्र ने अहल्या का शील भंग करके गौतम को श्राप देने के लिए उकसाया जिससे उनका तपोबल क्षीण हो सके । दो पुरुषों की इस लड़ाई में सज़ा पाई निरपराध, निरीह अहल्या ने ।

प्रथा खेतान ने "अहल्या" की भूमिका में लिखा है कि एक दिन वह राह चलते काली मिट्टी से टकरा गई और उसी काली मिट्टी का उनके मन में अहल्या के रूप में मानवीकरण हो गया । यहाँ श्रापग्रस्त और उपेक्षिता अहल्या सम्पूर्ण नारी जाति का प्रतिनिधित्व करती है । अहल्या का दर्द सम्पूर्ण नारी जाति का दर्द है —

"लौट आओ अहल्या
मृत्यु के बाद भी जागो तुम
गूँजता है आज भी
तुम्हारा ही दर्द
मेरे हृदय में ।"[21]

कवयित्री ने परंपराओं में बन्दिनी नारी, मुक्ति के लिए छटपटाती नारी को अहल्या के माध्यम से उद्भासित किया है । विश्व में हर स्थान पर हर क्षेत्र में हर संदर्भ में नारी ही सताई जाती है । नारी को अपनी पराधीनता और शोषण से मुक्ति दिलाने कोई और नहीं आएगा, उसे स्वयं इसके लिए प्रयास करना होगा —

"छोड़ दो
किसी और से मिली मुक्ति का मोह
तोड़ दो, शापग्रस्तता की कारा

तुम अपना उत्तर स्वयं हो अहल्या
ग्रहण करो
वरण की स्वतन्त्रता
एक बार देखो मेरी ओर
निकलो समाधि के अंधेरे से
मैं आई हूँ तुम्हारे
पथराए होठों को आवाज देने ।"[22]

इस प्रकार प्रभा खेतान ने अहल्या के माध्यम से सम्पूर्ण नारी जाति को दासता से मुक्ति का संदेश दिया है ।

.....

2· उपन्यास

आओ पे पे घर चलें (1989)

"आओ पे पे घर चलें" प्रभा खेतान की एक सशक्त रचना है । स्त्री की आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्री शोषण उससे मुक्ति और विदेशी संस्कृति के विभिन्न आयामों से गुजरती हुई यह कथा मानवीय संबंधों की जटिलताओं को बड़ी सूक्ष्मता से अंकित करती है । आर्थिक स्वतंत्रता, नारी-शोषण से मुक्ति की अनिवार्य शर्त है, इसीलिए बाईस वर्षीय प्रभा स्ट्रेट एक्सचेंज प्रोग्राम के तहत ब्यूटी थेरापी का कोर्स करने अमेरिका जाती है । घोपड़ा दम्पति (जिनके पास प्रभा को रहना था) प्रभा को बोझ समझते हैं, अत: प्रभा मिसेज डी· के द्वारा आईलिन के सुपुर्द कर दी जाती है । पाँच डालर प्रति घंटे के हिसाब से, चालीस वर्षीया तलाकशुदा मरील के सहयोगी के रूप में प्रभा को मिसेज डी· का वार्डरोब संभालने का काम मिल जाता है । साथ ही साथ वह "बेवरली हिल हेल्थ क्लब" में ब्यूटी थेरापी का कोर्स भी प्रारंभ कर देती है । इस प्रकार दिन में प्रभा मरील के साथ मिसेज डी· के वार्डरोब में काम करती है, दोपहर से शाम तक वह "बेवरली हिल हेल्थ क्लब" में काम सीखती है और रात को फिर आईलिन और उसकी कुत्तों की दुनिया में बसेरा करती है ।

यहीं प्रभा एक साथ कई स्त्रियों के संपर्क में आती है और महसूस करती है कि चाहे कहीं की भी स्त्री हो (पूरबी अथवा पश्चिमी) कमोवेश सबकी नियति एक सी ही है । मरील जो आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र है और अपने काम से संतुष्ट भी - अपनी तमाम कुंठाओं को

गालियों के माध्यम से बाहर निकालती है । प्रभा के टोकने पर बिगड़ कर उसने कहा - "जिन्दगी जब तुम्हें ठगेगी और बार-बार ठगेगी तब तुम क्या करोगी ? गाली नहीं बकोगी ? अभी बहुत छोटी हो । औरत के सीने में दर्द का कौन सा लावा खौलता रहता है, यह आज तुम क्या जानो ।"[23] मरील प्रभा को समझाते हुए कहती है - "यदि लकीर से हटी तो यह दर्द की पहली कड़ी है, दुनिया को झेलने के लिए लोहे का कवच पहनना होगा; और पहनने के बाद भी रोओगी ··· कोई भी दर्द इतना बड़ा नहीं होता कि औरत अपने आंसुओं का खजाना खाली कर दे । भविष्य में रो सको इसलिए आंसुओं को बचाये रखना ।"[24]

आईलिन जिसके इर्द-गिर्द सारी कथा घूमती है, मानवीयता और मानवीय संबंधों को जिलाए रखने की ज्वलंत मिसाल है । यद्यपि लोगों को परखने का उसका अपना नजरिया है, जिसके तहत वह मरील और क्लारा ब्राउन को नापसंद करती है जबकि कुत्ते पे पे को बेटे जैसा प्यार करती है तथा विदेशी प्रभा का भी पूरा ख्याल रखती है । प्रभा के अनुसार - "मैंने उसकी आँखों में झांका, काँच-सी पारदर्शी आँखों में असीम ममता ।"[25] दो पतियों और पाँच प्रेमियों के बीच आइलिन को पे पे से ही सबसे ज्यादा प्यार मिलता है और वही उसके जीने का सम्बल है । सत्तर वर्षीया आइलिन अपने जीवन का अनुभव सत्य बताती हुई कहती है - दुनियाँ में ऐसा कोई कोना बताओ जहाँ औरत के आँसू नहीं गिरे ?"[26]

मिसेज डी· भी तमाम सुख, वैभव ऐश्वर्य के बावजूद अपने पति और क्लारा ब्राउन के संबंधों के कारण हमेशा डिप्रेशन की शिकार

रहती हैं । विवेच्य उपन्यास में नारी पात्रों की प्रधानता है जिसमें पुरुष गौण रूप से आये हैं । पुरुष पात्र के रूप में डॉ॰ डी॰ का ही यत्र-तत्र उल्लेख है जो क्लारा ब्राउन के इश्क में गिरफ्तार होकर अपनी पत्नी मिसेज डी॰ को डिप्रेशन का शिकार बना देते हैं ।

विवेच्य उपन्यास के माध्यम से प्रभा खेतान ने स्पष्ट करना चाहा है कि आर्थिक स्वतंत्रता नारी-शोषण से मुक्ति के लिए अनिवार्य शर्त होते हुए भी एकमात्र शर्त नहीं है ।

तालाबंदी (१९९१)

प्रभा खेतान का यह दूसरा उपन्यास है । पहले उपन्यास "आओ पे पे घर चलें" में जहाँ विदेशी समाज को आधार बना कर स्त्री मात्र की नियति और उससे मुक्त होने के उसके संघर्षों का विशद और विविधमुखी वर्णन मिलता है, वहीं इस उपन्यास में श्याम बाबू के माध्यम से मारवाड़ी व्यापारिक घरानों की जीवन-झाँकियां श्रमिक समस्या और उसके निदान रूप में मार्क्सवाद पर प्रकाश डाला गया है ।

श्याम बाबू जिनका बचपन गरीबी में बीता था, अपनी जी तोड़ मेहनत से करोड़पति सेठ बन जाते हैं । श्याम बाबू ने हमेशा अपनी फैक्टरी को व्यापार को अहमियत दी - "शायद वह निर्धनता से दहशत खाये हुए थे या उन्होंने सम्पन्नता का स्वाद चख लिया था । इसलिए उन्होंने रिश्तों पर व्यापार को तरजीह दी ।

अपने व्यापार को बचाने के लिए उन्होंने कई तरह के पापड़ बेले । उन्होंने मार्क्सवाद को पढ़ने और समझने के लिए ट्यूशन रखी । लेबर प्राब्लम से दो-चार हुए, माँ की मूक शिकायतों की मार खाते रहे, पत्नी की भावनाओं को अनदेखा करते रहे, बेटे के कोप का भाजन बनते रहे । बेटे पप्पू का यह कथन उन्हें सन्न कर जाता है कि - "पापा आप ह्यूमन नहीं ··· आप तो अपने व्यवसाय के अलावा कुछ सोच नहीं पाते ।"[27]

श्याम बाबू की फैक्टरी शेखर दा नामक मार्क्सवादी यूनियन के लीडर के नाम पर चलती थी । श्याम बाबू ने स्वयं मार्क्स पढ़कर यूनियन का लीडर बनकर शेखर दा को हटाना चाहा । अब एक की जगह दो यूनियनें हो गईं । यूनियन के लोगों में लड़ाई छिड़ गई । मामला पुलिस, घेराव और तोड़-फोड़ की सभी हदों को पार कर जाता है । श्याम बाबू, शेखर दा से बात करके मामला सुलझाना चाहते हैं । श्याम बाबू को अब समझ में आता है कि - "यह भूल गया कि मैं एक विशिष्ट वर्ग का प्रतीक हूँ । मैं अकेला चाहे कितना भी भला होने की चेष्टा करूँ, मगर मेरे नाम के साथ तो शोषण की परम्परा जुड़ी हुई है । मैं {मैं} नहीं एक वर्ग हूँ । मजदूरों को मेरी उदार नीति पर भी भरोसा नहीं हो सकता ।"[28]

श्याम बाबू के माध्यम से प्रभा खेतान ने यह समझाने का प्रयास किया है कि व्यवहारिक ज्ञान से अलग कोरे सिद्धांतों के आधार पर कोई किसी दर्शन को समझने का दावा नहीं कर सकता । शेखर दा के माध्यम से यह संदेश देना चाहा है कि कम्युनिस्ट या मार्क्सवादी कोई तभी बन सकता है जब वह सच्चा इंसान हो, मानवीय गुणों से युक्त हो । शेखर दा के अनुसार - "कम्युनिस्ट

होने के लिए सिद्धांतों की जरूरत है, मगर कम्युनिस्ट होना एक बात है और सिद्धांतों को रटना दूसरी बात । भूखा मजदूर आज की लड़ाई नहीं लड़ सकता, कभी नहीं ।"[29]

अग्नि संभवा (1992)

"अग्नि संभवा" प्रभा खेतान की एक सशक्त रचना है । व्यापारिक रिश्तों को पृष्टभूमि में रखकर लिखे गए इस उपन्यास में चीन और हांगकांग के पात्रों के माध्यम से वहां की परम्परा और संस्कृति का परिचय दिया गया है ।

आईवी, जिसके व्यक्तित्व को ध्यान में रखकर उपन्यास का शीर्षक दिया गया है, सारा उपन्यास उसी के इर्द-गिर्द घूमता रहता है । आईवी जो मूल रूप से चीन की निवासी थी, हांगकांग में आकर टैक्सी चलाती थी । टैक्सी चलाने के क्रम में ही उसकी मुलाकात प्रभा मि॰ डिक्रे और शिव से होती है । उसकी ईमानदारी से प्रसन्न होकर मि॰ डिक्रे ने उसे अपने रिजनल मैनेजर शिव का सेक्रेटरी बना दिया । अंत में वह शिव के हेरा-फेरी का पर्दाफाश करती है और अपनी मेहनत तथा ईमानदारी के बल पर मि॰ डिक्रे की रिजनल मैनेजर बन जाती है । अपने व्यापारिक कार्यों के सिलसिले में प्रभा हांगकांग जाती है, इसी यात्रा के अंतर्गत उसने आईवी और उससे जुड़े हुए लोगों का विस्तार से वर्णन किया है ।

आइवी ने तमाम कठिन परिस्थितियों को झेलते हुए अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व का निर्माण किया । इस क्रम में चीन की छात्र क्रांति में उसका बेटा वोंग मारा गया, चीन से हांगकांग भागकर आते समय, जहाज में उसके भाई की कालरा से मृत्यु हो गई, उसकी दो बेटियों को जन्म लेते ही मार डाला गया, निकम्मे पति को बर्दाश्त करना पड़ा लेकिन फिर भी जीवन के प्रति उसका लगाव कम नहीं हुआ ।

प्रभा खेतान के अन्य दो उपन्यासों "आओ पे पे घर चलें" और "छिन्नमस्ता " के समान ही इसमें भी नारी-शोषण और उससे मुक्ति की कामना अभिव्यक्त हुई है । आईवी की दो संतानों को उसकी सास ने मार डाला, सिर्फ इसलिए कि वे लड़कियाँ थीं । आईवी के अनुसार - "सरकार की ओर से हम दो ही बच्चे पैदा कर सकते थे, अत: किसान के घर लड़की होना अभिशाप था ··· हाय मेरी बच्ची को जालिमों ने मार डाला ।"[30] पूंजीवादी समाज ने अन्य पदार्थों की तरह स्त्री को भी वस्तु बना डाला है, इस पर भी तीखी टिप्पणी है - "शरीर बेचना भी धंधा कहलाता है, पूंजीवादी समाज की सबसे घिनौनी देन ।"[31]

साम्यवादी सरकारें सबको आकर्षित करती हैं, परंतु उसमें भी साम्यवाद के नाम पर सामान्य जनता का शोषण होता है, प्रतिरोध करने वाले बौद्धिकों, लोगों यहाँ तक कि सामान्य जनता को भी गोलियों से भून दिया जाता है । इस उपन्यास में इन सब बातों का उल्लेख अत्यंत सूक्ष्मता से किया गया है । यथा —

> "तुम्हारे माओ ने हमेशा बौद्धिकों को नयी कोटि की सड़ांध बताया । 1957 में हजारों बौद्धिकों को यह कहकर जेल में बंद कर दिया गया कि चीन की स्वायत्तता को खतरा था ।"[32]

3. अनूदित

स्त्री उपेक्षिता (1988)

"स्त्री उपेक्षिता" फ्रेंच लेखिका सीमोन द बोउवार की पुस्तक "द सेकेण्ड सेक्स" (1949) का हिन्दी अनुवाद है । स्त्री, उसकी गुलामी और उसकी नियति को सीमोन ने बड़े जोरदार शब्दों में सुव्यवस्थित ढंग से वर्णित किया है । इस कृति में सिमोन ने सामान्य स्त्री और उसकी समस्याओं को मुद्दा बनाया है । इस कृति को पढ़कर प्रत्येक स्त्री को यही लगता है कि इसमें उसी की कहानी वर्णित है ।

प्रभा खेतान ने जब इस पुस्तक को पढ़ा तो उन्हें लगा कि विश्व भर में स्त्री का चेहरा एक जैसा है, अकेली भारतीय स्त्री ही मालिक गुलाम के सिद्धान्त के आधार पर अन्याय की पीड़ा नहीं सह रही । इस पुस्तक के विषय में स्वयं प्रभा खेतान लिखती हैं - "यह पुस्तक न मनु स्मृति है और न गीता या रामायण । हिन्दी में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का मेरा उद्देश्य सिर्फ यह है कि विभिन्न भूमिकाओं में जूझती हुई, नगरों व महानगरों की स्त्रियाँ इसे पढ़ें ।"[33]

सीमोन ने विश्व की तमाम स्त्रियों को अन्या अथवा उपेक्षिता के एक प्लेटफार्म पर लाकर खड़ा किया है, स्त्रियाँ जिनका परिवेश और समाज भले अलग है, परन्तु नियति एक है । हाँ उन स्त्रियों को जो अपवाद स्वरूप हैं इनसे अलग रखा गया है । प्रभा खेतान ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए स्त्री-उपेक्षिता की भूमिका में

लिखा है - "जितना कुछ सीमोन ने लिखना चाहा वह एक साधारण स्त्री के सन्दर्भ में है उसे अपवादों और विशिष्टों पर लागू करना बड़ी भारी गलती होगी ।"[34]

इस पुस्तक में नारी का इतिहास आदिकाल से चित्रित है । इसमें स्त्री का बचपन, यौवन विवाहावस्था, मातृत्व, सामाजिक जीवन और वृद्धावस्था विस्तारपूर्वक वर्णित है । इस पुस्तक में एक बात स्पष्ट रूप से सामने उभर कर आती है कि समाज, रीति-रिवाज, सिद्धांत, विचार, परम्पराएं सभी का निर्माता या विधाता पुरुष ही है और पुरुषों ने अपने द्वारा बनाए इस विधान में नारी को हमेशा दोयम दर्जा प्रदान किया है । सीमोन मानती हैं कि - स्त्री पैदा नहीं होती, बल्कि उसे बना दिया जाता है ।

प्रभा खेतान ने हिन्दी में इस पुस्तक का अनुवाद कर हिन्दी पाठकों के लिए इसे सहज और सरल बना दिया । वह स्वयं कहती है - "इस पुस्तक का अनुवाद करने के दौरान कभी-कभी मन में एक बात उठती रही है । क्या इसकी जरूरत है ? शायद किसी की धरोहर मेरे पास है, जो मुझे लौटानी है । यह किताब जहाँ तक बन पड़ा मैंने सरल और सुबोध बनाने की कोशिश की । मेरी चाह बस इतनी है कि यह अधिक से अधिक हाथों में पहुँचे, उसकी हर पंक्ति में मुझे अपने आसपास के न जाने कितने चेहरे झाँकते नजर आये । मूक और आँसू भरे । यदि कोई इससे कुछ भी प्रेरणा पा सके, औरत की नियति को गहराई से समझ सके तो मैं अपनी मेहनत बेकार नहीं समझूँगी । हालांकि जो इसे पढ़ेगा, वह अकेले पढ़ेगा, लेकिन यह सबकी कहानी होगी । हाँ, इसका भावात्मक प्रभाव अलग-अलग होगा ।"[35]

साँकलों में कैद क्षितिज {1988}

इस काव्य संग्रह में प्रभा खेतान ने दक्षिण अफ्रीकी कविताओं का अनुवाद किया है । प्रस्तुत संग्रह में प्रभा खेतान ने निम्न कवियों की कविताओं को संग्रहीत किया है । डेनिश बूटश, वेरी फिनवर्ग, केयोरपेत्से गोसितसाइल, ए·एन·सी· कुमालो, हम लेबिन, इलवा मैके, डंकन माटलहो, रेनेका माटल हो, विक्टर माटलो, जॉन मात शिकिला, विक्टर मोटापनियान, ओस्वाल्डगत्शाली, ऑथर नोर्जे, मोन्गाने वाली सरोटे, त्रिस्टोफर, वेनवाइक, स्कारलेट व्हिट्मैन, सोयेन्का ओल ओ जॉन पेपर क्लार्क - साथ ही इन कवियों का संक्षिप्त परिचय भी दिया है ।

प्रश्न उठता है कि आखिर इन कवियों की कविताओं में ऐसा क्या था जिसने प्रभा खेतान को बार-बार उन्हें पढ़ने को बाध्य किया ? प्रभा खेतान ने महसूस किया कि रंगभेद और नस्लों की समस्या केवल दक्षिण अफ्रीका की समस्या नहीं है अपने दूसरे रूप में वह भारत में भी विद्यमान है । ब्राह्मण और शूद्र, जमींदार और खेतिहर मज़दूर, अफसर और नौकर, हिन्दू-मुसलमान के भेदभावों से हमारा भारत आज भी बुरी तरह ग्रस्त है । लेखिका ने इन अनुदित कविताओं का भारतीय संदर्भ बताते हुए एक गोरे अमेरिकन के इस व्यंग्य को चित्रित किया है - "जाओ अपने देश में । वहाँ आदमी की घृणा दूर करो । पूछो अपने कानून से । क्या हिन्दू और मुसलमान एक ही दस्तरख्वान पर बैठकर खा लेंगे ? पूछो अपनी सरकार से । गाँधी को किसने मारा ? पूछो अपने धर्म गुरूओं से

जो यहाँ पैसा कमाने चले आते हैं, कृष्णा-कृष्णा गाते हैं । उसी कृष्ण के मन्दिर में अछूत चला जाये तो तलवारें खींच ली जाती हैं ।"[36]

दक्षिण अफ्रीका के उक्त कवियों की लेखनी स्वाधीनता, जेल की यातना और गोरे शाही के आतंक के गिर्द ही घूमती है । कुछ कवियों ने जेलों के अपने निजी अनुभवों को चित्रित किया है और कुछ ने गोराशाही के आतंक को समाप्त करने के लिए खुद बलिदान हो गए लोगों का चित्रण किया है । इसी के अंतर्गत डेनिस ब्रूटस (1924) ने एक कैदी की यातना का चित्रण करते हुए कहा है —

"जमीन पर पटके गए कैदी की गर्दन को
दबा कर पाँवों से
बार-बार डूबो रहे थे वे
गड्ढे में उसके सिर को
असहाय तड़प रहा था
वह कैदी
जब पड़ती थी उस पर
बन्दूक के कुन्दे की घातक चोट
बड़ा पारदर्शी था
मौत के दहशत से भरा वह दिन ।"[37]

इसी प्रकार केथोरप्रेत्से गोसितसाइल (1938) तमाम स्वतन्त्रता सेनानियों के संघर्षों को स्मरण करते हुए दक्षिण अफ्रीका को सलाम करते हैं और अपनी मुक्ति की कामना करते हुए कहते हैं —

"हमें लड़ना है शान्ति के हाशिये पर
शान्ति के लिए ... ।"[38]

विदेशी भूमि से जुड़ी ये तमाम कविताएं हमें रोमांचित करती है । अपने देश में हो रहे भेदभाव के प्रति हमारी निष्क्रिय और बेफिक्र मानसिकता को ये कविताएँ गहरी बेचैनी में डाल देती हैं । इस संदर्भ में आनन्दस्वरूप वर्मा का यह कथन प्रासंगिक है कि - "दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद पर घड़ियाली आँसू बहाने वाला नेल्सन मण्डेला को सम्मान देकर खुद को गौरवान्वित करने वाला नस्लवादी हिंसा के खिलाफ जोरजोर से चीखने वाला भारत का सत्ताधारी धर्म अगर सदियों से उत्पीड़ित हरिजनों तथा अन्य पिछड़ी जातियों को सामाजिक न्याय नहीं दिला सका तो पूरा देश एक ऐसे गृहयुद्ध की चपेट में आ जायेगा, जिससे निकल पाने का कोई रास्ता भी नहीं सूझेगा ।"[39]

5. यात्रा संस्मरण

उसे रविशंकर का कैसेट चाहिए (1988)

प्रभा खेतान ने इस यात्रा संस्मरण में तुर्की और वहाँ के कुछेक शहरों को बड़े सहज और आत्मीय भाव से दर्शाया है । वार्तालाप शैली के इस यात्रा संस्मरण की भाषा अत्यंत परिष्कृत और प्रवाहपूर्ण है ।

हबीब जो की पत्रकार है बार-बार प्रभा से रविशंकर का कैसेट माँगता है, उसे सुनने की इच्छा व्यक्त करता है । उसके अनुसार संगीत का बस एक ही स्वर होता है मानवीयता का स्वर, मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का स्वर और इस समय उसके देश में इसी चीज की सबसे ज्यादा कमी है । हबीब के अनुसार - "देखना एक दिन हम सब मुसलमान शिया, सुन्नी, ईराक, ईरान बस कट-कटकर मर जाएंगे ।"[40] हबीब प्रभा को समझाता है कि जुलफ्सु जो वहाँ का क्षेत्रीय गायक है उसके और रवि शंकर के सितार में कोई अंतर नहीं है । जुलफ्सु आतंकवादी था । सात साल जेल रहा, 1980 के मिलिट्री कू में वह जेल में बंद हो गया परंतु छूटने के बाद भी वह पूंजीपतियों के खिलाफ सोशलिस्ट गाने गाता है ।

दुनिया में नारी के प्रति पुरुषों का जो दृष्टिकोण है उसे यहाँ भी अभिव्यक्ति मिली है । सोशल डेमोक्रेट का समर्थक और प्रेस की स्वतंत्रता चाहने वाला हबीब कहता है -

"मुझे कमाती हुई बीबी अच्छी नहीं लगती ।"[41] जबकि

प्रभा के अनुसार - "औरत का वर्ग नहीं होता न उसकी कोई जाति न उसका कोई नाम, बस वह आधी दुनिया है ।"[42] इस प्रकार प्रभा खेतान की अन्य कृतियों की तरह इस कृति में भी नारी-चेतना अभिव्यक्त हुई है ।

....

संदर्भ

1. प्रभा खेतान - "अपरिचित उजाले", दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1981, पृ॰-8.

2. वही, पृ॰-66 .

3. वही, पृ॰-25.

4. वही, पृ॰-18.

5. प्रभा खेतान, सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं, दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1982, अपनी बात, पृ॰-7.

6. वही, पृ॰-65.

7. वही, पृ॰-74.

8. प्रभा खेतान, सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं, दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1982, अपनी बात, पृ॰-7.

9. प्रभा खेतान - एक और आकाश की खोज में, कलकत्ता, ग्रीक चर्च रोड, अप्रस्तुत प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1985, पृ॰-01.

10. वही, पृ॰-01.

11. वही, पृ॰-07.

12. वही, पृ॰-07.

13. प्रभा खेतान - कृष्ण धर्मा मैं - तन्मुकलेन कलकत्ता, प्रकाशक स्वर समवेत, प्रथम संस्करण, 1986, पृ.--06.

14. वही, पृ.--16.

15. वही, पृ.--12.

16. वही, पृ.--16-17.

17. प्रभा खेतान - हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ, तमसुकलेन प्रकाशक, स्वर समवेत, प्रथम संस्करण 1987. इसके फ्लैप नं.--1 पर परमानन्द श्रीवास्तव की टिप्पणी

18. वही, पृ.--12-14.

19. वही, पृ.--66.

20. वही, पृ.--67.

21. प्रभा खेतान, अहल्या, दिल्ली, सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण, 1988, पृ.--18.

22. वही, पृ.--27.

23. प्रभा खेतान, आओ पे पे घर चलें, "हंस" सम्पादक - राजेन्द्र यादव, अप्रैल, 1989, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, पृ.--70.

24. वही, पृ.--70.

25. वही, पृ.--73.

26. प्रभा खेतान - आओ पे पे घर चलें, "हंस", सम्पादक - राजेन्द्र यादव, अप्रैल, 1989, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, पृ.-73.

27. प्रभा खेतान - "तालाबंदी", दिल्ली सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण 1991, पृ.-83.

28. वही, पृ.-91.

29. वही, पृ.-113.

30. प्रभा खेतान - "अग्निसंभवा", हंस, सम्पादक - राजेन्द्र यादव, अप्रैल 1992, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, पृ.-58.

31. वही, पृ.-64.

32. वही, पृ.-58.

33. सीमोन द बोउवार, "द सेकिन्ड सेक्स, अनुवाद प्रभा खेतान, "स्त्री उपेक्षिता; दिल्ली, हिन्दी पॉकेट बुक्स, प्र.सं.-1991, पृ.-17.

34. वही, पृ.-28.

35. वही, पृ.-16.

36. साँकलों में कैद क्षितिज (अनुवादक - प्रभा खेतान) दिल्ली, सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण 1986, पृ.-06.

37. वही, पृ.-19.

38. सॉकलों में कैद क्षितिज (अनुवादक - प्रभा खेतान) दिल्ली, सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण, 1986. पृ.-36.

39. आनन्द स्वरूप वर्मा, "दक्षिणी अफ्रीकी गोरे आतंक के खिलाफ काली चेतना" - इलाहाबाद, नीलाभ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1991, पृ.-16.

40. पत्रिका - मासिक "हंस", सम्पादक, राजेन्द्र यादव, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, अंक - दिसंबर 1988 में प्रभा खेतान का यात्रा संस्मरण "उसे रवि शंकर का कैसेट चाहिए", पृ.-14.

41. वही, पृ.-13.

42. वही, पृ.-13.

....

तृतीय अध्याय

नारी संबंधित परंपरागत अवधारणाओं से छिन्नमस्ता का विभेद

1. छिन्नमस्ता की नायिका द्वारा मजबूरीवश परंपराओं और रीति-रिवाजों का निर्वाह

2. परंपराओं के बंधन को तोड़कर नायिका का अपने लिए स्वतन्त्र ज़मीन की तलाश और संघर्ष

.....

"स्वतन्त्रता दी नहीं जाती ली जाती है : उसके लिए संघर्ष करना पड़ता है अनवरत कठिन संघर्ष ।"[1]

— प्रो. मैनेजर पाण्डेय

जे.एस. मिल के अनुसार तमाम सामाजिक और प्राकृतिक कारण मिलकर इस बात को असंभव बनाते हैं कि औरतें पुरुषों की शक्ति के विरुद्ध कोई सामूहिक विद्रोह करें । - इस असंभव को संभव बनाने के लिए निरंतर किए गए संघर्ष के आख्यान का नाम ही "छिन्नमस्ता" है । कठिन संघर्ष के पश्चात् "छिन्नमस्ता" उपन्यास की नायिका प्रिया की जो तस्वीर उभर कर सामने आती है वह स्पष्टत: मनुवादी अथवा परंपरागत स्त्री संबंधी धारणाओं को पुष्ट करने वाली स्त्रियों से भिन्न है । उपन्यास का शीर्षक भी इसी बात की पुष्टि करता है । "छिन्नमस्ता" का शाब्दिक अर्थ है - "जिसका मस्तक कटा हो" - अर्थात वैसी स्त्री जो - परंपरा, परिवार, समाज के जानलेवा बंधनों तथा सांस्कृतिक ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़कर अपना अधिकार स्वयं हासिल करने के लिए, अपना भाग्य आप निर्मित करने के लिए - संघर्ष कर रही है । "छिन्नमस्ता" एक मिथक भी है । "छिन्नमस्ता" का पौराणिक रूप है "अपना ही कटा हुआ सिर अपने बाएँ हाथ में लिये, मुंह खोले और जीभ निकाले हुए अपने ही गले से निकली हुई रक्तधारा को चाटती हुई, हाथ में खड्ग लिये, मुंडो की माला धारण किए और

दिगंबर, एक देवी । इस मिथक को शीर्षक के रूप में अपना कर प्रभा खेतान ने स्पष्ट करना चाहा है कि स्त्री की असली लड़ाई - स्त्री के स्वभाव संस्कार व प्रकृति के विषय में भारतीय मानस में घर किये हुए उन तमाम परंपरावादी और मनुवादी धारणाओं से है जिनका वास केवल भारतीय पुरुष के मानस में ही नहीं भारतीय स्त्री के मानस में भी है ।

प्रिया का संघर्ष उन तमाम परंपराओं और बंधनों से मुक्ति का संघर्ष है जो पुरुष परंपरा की देन है । सोने के पिंजड़े में गुलाम बने रहने की नियति को प्रिया ने अपना भाग्य नहीं समझा वह कहती है - "हाँ, यह मेरी गलती थी कि मैंने गुलामी स्वीकारी ... गुलाम बने रहने की नियति को अपना भाग्य समझा ।"[2] प्रिया के सर डॉ॰ चटर्जी का भी कहना है कि स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की आंसू भरी नियति स्वीकार करना बहुत बड़ा अपराध है । समाज के द्वारा पत्नी, बहन माँ, बेटी का जो दर्जा स्त्री को दिया जाता है वही किसी हद तक उसकी मानसिक बनावट का भी नियामक होता है । समाज में स्त्री की भूमिका और उसकी सामाजिक हैसियत का निर्धारण पुरुषों के द्वारा ही हुआ है । इस प्रकार पुरुष प्रधान समाजों में सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण होता रहा है । इसी दमन, शोषण और आरोपित भूमिकाओं से मुक्ति के लिए प्रिया संघर्षरत है । उसके अनुसार - "व्यवस्था को तोड़नेवाली औरत को जहाँ समाज सौ कोड़े लगता है, वहीं पुरुष को मंच पर क्रान्तिकारी कहकर बैठाता है । औरत हर तरह मरती है । लेकिन रोती हुई औरत मुझे अच्छी नहीं लगती । मुझे औरत की इस निष्क्रियता पर झुंझलाहट होती है । यह क्या घुट-घुटकर मरना ... ?"[3]

प्रिया के संघर्ष और उससे उत्पन्न मानसिक शारीरिक यातना को कोई स्त्री ही समझ सकती है । अन्यथा पुरातनपंथी मान-मर्यादाओं और तथाकथित परंपराओं बनाम रूढ़ियों के जकड़बंद घेरे से बाहर निकलने के लिए प्रिया द्वारा किए गए विद्रोह के लिए अरविंद जैन जैसे समीक्षक भी यही कहते पाए गए कि - "इंडिया टुडे में हमेशा विद्रोही होने की बात कहाँ से आ गई ? ऐसा कोई विद्रोह उपन्यास में तो दिखाई नहीं देता । फिर वह कौन से विद्रोह की भाषा भूल गई है ? विद्रोह की भाषा भूल कर कौन-सी (किसी) क्रान्ति जिंदगी में चाहती है ? बिना विद्रोह के क्रान्ति ? ... सब कुछ इतना अंतर्विरोधी और विसंगतिपूर्ण है कि कुछ समझ ही नहीं आता । चूहा-दौड़ में आगे निकल जाने (वह भी उन्हीं पुराने मर्दवादी तौर तरीकों से) या आर्थिक रूप से अपने चमड़ा व्यवसाय को देश-विदेश तक फैला लेने को "विद्रोह" या "क्रान्ति" की संज्ञा देना और मार्क्सवादी शब्दों का इस्तेमाल भर "नारी स्वातंत्र्य" की कौन-सी भावना का कैसा वास्तविक रूप उद्घाटित कर सकता है ?"[4]

प्रश्न उठता है कि अरविंद जैन कैसा विद्रोह अथवा क्रांति चाहते हैं ? सदियों से जिस अर्थतंत्र पर पुरुष वर्ग ने सारे दाव-पेचों के साथ प्रायः एकछत्र कब्जा जमा रखा है, उसमें स्थान बना पाना क्या किसी विद्रोह अथवा क्रान्ति से कम है ? स्त्री स्वतन्त्रता की पहली और अनिवार्य शर्त आर्थिक आत्मनिर्भरता है और उसी के लिए प्रिया ने तमाम संघर्ष झेले । इतने बड़े परिवर्तन को एक स्वस्थ शुरूआत (चूहा-दौड़) मानने में पुरुष वर्ग को अभी समय लगेगा ।

प्रिया की पश्चिमी दोस्त जूडी कहती है — "जानती हो इतिहास, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान - वह सब तो पुरुष ने ही लिखा है, यह चाहे पूरब हो या पश्चिम और सच कहूँ तो परिवर्तन किसको अच्छा लगेगा ? खासकर उसे, जिसे सदियों से इतनी सुविधा मिली हुई है ।"[5] कानून ने भले ही स्त्रियों को बहुत सारे अधिकार दिए हैं, लेकिन कानून मानवीय हो या अमानवीय उसे स्त्रियों ने नहीं पुरुषों ने बनाया है और पुरुष कैसा भी महान संत क्यों न हो उसका मानस एक स्त्री को अपने से आगे निकलते देख तिलमिला उठता है । जूडी के ही अनुसार - "वे एक सफल स्त्री की ओर आकर्षित जरूर होते हैं, मगर उनके भीतर का पुरुष बस उस स्त्री को दबोचना चाहता है, यानी उसके अहम को संतुष्टि मिलती है कि देखो ऐसी औरत भी मेरे वश में है ।"[6] ऐसी अवस्था में तमाम अवरोधों के बावजूद एक स्वतंत्र जमीन की तलाश को स्त्री संबंधी हमारी परंपरागत धारणाओं अथवा मान्यताओं पर एक सशक्त और करारी चोट न मानकर चूहा-दौड़ मानना कहाँ तक संगत है ?

सदियों से एक स्त्री के लिए जो नैतिक मानदंड स्थापित कर दिए गए हैं और इन मानदंडों के अनुरूप भारतीय स्त्री की जो छवि हमारे मनों में रच बस गई है, प्रिया का व्यक्तित्व उस छवि को छिन्न-भिन्न कर देता है । अथवा यूँ कहें कि तमाम मानदंडों को तोड़ती हुई वह निजी और स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्वामिनी बनती है । निजी इसलिए कि मेरे अनुसार परंपरागत भारतीय स्त्री का निजी कुछ भी नहीं होता । इस प्रकार अपने प्रयासों से प्रिया स्टीरियो-टाइप नारीत्व की अवधारणा से स्वयं को मुक्त करती है ।

हमारी परंपराएं, मान-मर्यादाएँ सामाजिक संस्थाएँ, वैचारिक संरचनाएँ सदियों से इस तरह ढाली गई हैं कि पुरुषवादी वर्चस्व को बरकरार रखा जा सके । पुरुषवादी वर्चस्व से मुक्ति के लिए आवश्यक है कि - क्षमा, दया, प्रेम, करुणा, सहनशीलता की देवी बनाकर सब कुछ सहते रहने का जो पाठ स्त्रियों को अब तक पढ़ाया गया है उससे उनका मोहभंग हो । इस उपन्यास में जगह-जगह इस तथ्य को अभिव्यक्ति मिली है, जो पुरातनपंथी परंपराओं और विचारों पर तीव्र प्रहार है । यथा —

"यानी आपसी ईमानदारी, वफादारी, प्यार समर्पण - यह सब कुछ नहीं ?"

"कुछ नहीं । सच कहूँ नरेन्द्र ये शब्द भ्रम हैं । औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इन शब्दों के चक्रव्यूह से कभी नहीं निकल पाए ताकि युगों से चली आती आहुति की परंपरा को कायम रखे ।"[7]

"वास्तव में विवाह की सारी व्यवस्था ही इस भाव पर आधारित है और जहाँ स्त्री की चेतना विकसित होने लगती है, वहीं यह व्यवस्था चरमराने लगती है ।"[8]

आज की प्रिया जैसी अनेकों स्त्रियाँ स्त्री की परंपरागत रूढ़िवादी छवियों से भिड़ती-भिड़ाती अपनी एक अलग स्वतंत्र पहचान बनाने के लिए जिस जद्दोजहद भरी हर्डलरेस में शामिल हैं - उसमें पुरुष की भूमिका अवरोधक की ही होती है, सहायक की नहीं ।

पुरुष स्त्री को उतनी ही छूट ॥?॥ देना चाहता है, जहाँ तक उसके अपने हित सधते हों । एक स्त्री को अपने बराबर अथवा अपने से आगे निकलते देख पुरुष कहता है - और तुम्हें कितनी छूट दी जाए ? उपन्यास में भी नरेन्द्र के माध्यम से पुरुषों की इस लिजलिजी मानसिकता का परिचय दिया गया है । यथा -

"दरअसल तुम्हें इतनी खुली छूट देने की गलती मेरी ही थी । मुझे पहले ही चिड़िया के पंख काट डालने चाहिए थे । पर मैं तुम्हारी बातों में आ गया । तुम्हारे इस भोले चेहरे के पीछे एक मक्कार औरत का चेहरा है ।"[9] साथ ही "मत बनाओ । श्रृंगार-पटार करो और रंडियों-सी जाकर आफिस में बैठो" - कहते हुए भनाक से काँच की मेज पर चम्मच पटककर नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ था ।"[10]

पुरुषों ने अनेकानेक बंधनों में जकड़कर सदियों से महिलाओं का दमन और शोषण किया है । अब स्त्री संबंधी मनुवादी अवधारणाओं में आमूल परिवर्तन लाना होगा और स्त्री विरोधी संस्कृति को खत्म करना होगा ।

स्त्री और पुरुष के बीच प्राकृतिक अंतर केवल जैविक है । परंतु पुरुष सत्ता ने दमन के लिए स्त्रियोचित व्यवहार के जो प्रतिमान निर्धारित किये, वे लम्बे अरसे तक अर्जित रहने के कारण स्त्री का स्वभाव हो गए । इस प्रकार भारतीय स्त्रियों को जिन परंपरागत मिथकीय संस्कारों में जकड़ कर रखा गया है प्रिया का व्यक्तित्व भी उससे पूरी तरह मुक्त नहीं है । बचपन में बड़े भाई द्वारा बलात्कार के बारे में चुप्पी और किसी से न कहने की सौगंध दिलाए जाने पर

प्रिया को लगता है कि यह मेरा कलंक है । शील, पवित्रता और कुवारापन के जकड़बंद संस्कारों में भारतीय स्त्रियाँ इस प्रकार जकड़ दी जाती हैं कि किसी भी स्थिति में इनके भंग होने पर वे स्वयं को ही दोषी मानती हैं और अपराध बोध से ग्रस्त हो जाती हैं । इस प्रकार शील कुवांरापन और पवित्रता के मिथकीय संस्कारों की शिकार प्रिया संभवत: गहरे अपराध बोध के कारण ही आत्महत्या की कोशिश करती है । इसी प्रकार भाई द्वारा बलात्कार के पश्चात् वह अपने— "नग्न चिकनी मांसल देह" - को ध्यान से देखती है कि कहीं कोई खरोच का निशान तो नहीं । यहाँ नग्न और चिकनी मांसल देह को मूल्यवान और खूबसूरत वस्तु के रूप में मानने समझने और स्वीकार करने का कारण - पुरुषवादी दृष्टिकोण से अपने शरीर का मूल्यांकन है । साथ ही प्रिया के ही शब्दों में - "मुझे प्रेम सेक्स, विवाह ये सारे सदियों पुराने घिसे हुए शब्द लगने लगे थे । नहीं, शब्द नहीं मांस के ताजा टुकड़े, लहू टपकते हुए । इन शब्दों के पीछे की दीवानगी और आदिकाल से चली आ रही परंपराओं का चेहरा सिर्फ औरत की आंसुओं से तरबतर है ।"[11] यहाँ प्रिया प्रेम, सेक्स, विवाह सबसे घृणा के बावजूद सब करती है और स्वेच्छा से । वस्तुत: व्यक्ति के रूप में जहाँ उसे प्रेम, सेक्स, विवाह की जरूरत है, वहीं स्त्री होने के कारण इन्हीं मोर्चों पर उसे सबसे ज्यादा अवमानना, अपमान, तिरस्कार का भी सामना करना पड़ता है ।

यद्यपि प्रिया को अहसास है कि मिथकीय संस्कार, परंपराएँ अमानवीय हैं परंतु पता नहीं इनमें ऐसा क्या है कि प्रिया को लगता है - जहाँ मेरी जैसी विद्रोही लड़कियाँ भी समर्पिता पत्नी और

माँ बन जाने को विवश हो जाती है । स्त्री संबंधी मिथकीय संस्कारों और परंपरागत धारणाओं को पुष्ट करने वाले व्यवहार और दिनचर्या के बावजूद प्रिया को अहसास है कि देवी, माँ, पत्नी, बहन, सहचरि प्राण बनी रहकर आत्मदान और आत्मपीड़न में ही उसके जीवन की सार्थकता नहीं है । इसी चेतना के धरातल पर खड़ी होकर प्रिया स्त्री संबंधी परंपरागत छवियों को तोड़कर अपनी एक अलग पहचान बनाती है ।

प्रिया के अलावा नीना और पश्चिमी जूडी भी स्त्री की बनी बनाई छवियों को तोड़कर अपनी अलग पहचान बनाने के लिए संघर्षरत हैं । जूड़ी पश्चिमी है अत: उसकी स्थिति प्रिया और नीना से भिन्न है । शेष दो पात्र इस कड़वी सच्चाई को प्रस्तुत करते हैं कि भारतीय समाज में स्त्री के लिए निर्धारित भूमिका के विरोध में साहसपूर्ण विकल्प का चयन यदि असंभव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य है । कम उम्र की नीना प्रिया से ज्यादा स्पष्टवादी और बेबाक है । वह कहती है - "यदि दुखी हूँ तो सुख भी अर्जित करूँगी । अपने पैरों पर खड़ी स्त्री का कोई निरादर नहीं कर सकता । भाभी । पापा का यों महीने का महीने रूपए देना ? मुझे नफरत होती है उनसे । सच कहती हूँ भाभी, ऐसे बुजदिल इंसान से मुझे सख्त नफरत है ।"[12] प्रिया और नीना के साहस की प्रकृति में जो अंतर दिखाई पड़ता है वह दो पीढ़ियों का अंतर है । लेकिन दोनों में जो साहस और गुत्थीहीन खुलापन है वह उनकी शिक्षा और बौद्धिक सजगता की देन है ।

दूसरी ओर प्रिया की माँ, बड़ी बहनें, भाभीयाँ, सास, ससुर की रक्षिता छोटी माँ - ये सारे स्त्री पात्र स्त्री संबंधी

परंपरागत अवधारणाओं को पुष्ट करने वाले हैं । विभिन्न प्रकार के बंधनों में जकड़ी स्त्री, के जीवन के अनेक पक्ष इन पात्रों के माध्यम से गहरी संवेदनशीलता और भावात्मक लगाव के साथ उकेरे गए हैं । इनमें से कोई भी अपनी स्थिति से संतुष्ट नहीं हैं, परंतु फिर भी वैसा ही जीवन जीने के लिए अभिशप्त है । यथा — "अम्मा को तो मैंने कभी सुखी नहीं देखा । उपन्यासों में पढ़ती थी कि बच्चों से औरत संपूर्ण होती है, पर अम्मा का यों अपने ही बच्चों पर झींकते रहना, बड़ी जीजी की जिंदगी का चार बच्चों के बावजूद अधूरापन सर का दर्द लिए पड़े रहना, सल्लो जीजी का रोज वही माइग्रेन का दर्द, बड़ी भाभीजी की घुटन । सुखी कौन था ? कोई भी तो नहीं ।"[13]

- इसका अर्थ यह नहीं कि ये पात्र इकहरे और सपाट हैं, इनके जीवन के भी अपने द्वन्द्व हैं । इनमें से कोई भी क्राउड-सीन की तरह निर्जीव, यांत्रिक और चेहराहीन पात्र नहीं है । प्रिया की माँ - जिसकी नज़र में स्त्री होना ही पाप है, एक ही स्थिति है, गुलामों का जत्था है जो बिना मालिक के जी नहीं पाएगा - उसे भी अपनी वास्तविक स्थिति का बोध है । यथा - "राधा । हमलोगों का भी कोई जिंदगी है ? जब से शादी हुआ हर दसवें महीने बच्चा पर बच्चा । ... चार बार तो ओगण (गर्भपात) हो गया । शरीर में कोई दम रहता है क्या ?"[14]

दरअसल नारी जीवन की जिन समस्याओं को प्रभा खेतान ने प्रस्तुत किया है उनका परिदृश्य इन स्त्री पात्रों के बिना पूरा नहीं होता । फोकस चाहे जिस पर हो स्त्री संबंधी परंपरागत अवधारणाओं पर करारे चोट के लिए उसके चारों ओर का दृश्य रचने में भी उतनी ही सतर्कता बरतनी पड़ती है ।

प्रभा खेतान कहीं भी अपने मूल कथ्य से भटकती नहीं हैं । उपन्यास के प्रारंभ में गुड़ियों के खेल के माध्यम से भारतीय स्त्रियों का सही रूप सामने आता है । समस्या है कि लुगदी वाली गुड़िया बिना दीवार का सहारा लिए खड़ी कैसे हो, ताकि दूल्हा उसके गले में वरमाला डाल सके । दाई माँ कहती हैं - "हाँ सरोज बाई की गुड़िया तो चलत रहत हई पर ऊ तो बिलायती मेम है ।" इस पर प्रिया पूछती है - "क्यों देसी गुड़िया खड़ी भी नहीं हो सकती ? ब्याह के टाइम पर भी नहीं ?"[15] नारी शोषण से मुक्ति के लिए प्रिया के महाभियान को "लहू-लुहान कदमों की आश्वस्त यात्राएँ"[16] कहते हुए विद्यानिधि ने कहा है - "नन्हीं प्रिया द्वारा किए गए उक्त सार्थक सवाल के आलोक में ही पूरे उपन्यास का मर्म व्याख्यायित किया जा सकता है ।"[17] इसी प्रकार प्रिया द्वारा बार-बार देखे जाने वाले सपने में भी शोषण से मुक्ति की कामना व्यंजित होती है । जैसे - "मैंने सपने में देखा मैं एक बड़े कमरे में बंद हूँ । शायद कोई मेरी ओर झपटता है । मैं एक छलांग में कमरे से बाहर लॉबी में भागती चली जा रही हूँ । अचानक मुझे एक्जिट दिखता है । मैं धड़-धड़ाती हुई घुमावदार सीढ़ियाँ उतरती चली जा रही हूँ, मानों दसों मंजिले एक मिनट में मैंने तय कर लीं । इसी प्रकार अचानक मुझे एक छोटी लड़की दिखती है - चार-पाँच साल की । उसे तैरना नहीं आता । ... यह तो डूब रही है । ... मैं उसे तैरना सिखा रही हूँ । ... पर वह बच्ची तैरना सीख गई । ... सुख की एक सांस लेकर कहती हूँ, हाँ बेटे ! ऐसे ही तैरा जाता है, तुम पहले गलत तैर रही थी ।"[18]

इस प्रकार परंपरा में लिपटी स्त्री पराधीनता के खिलाफ प्रिया का सम्पूर्ण व्यक्तित्व अविचल खड़ा है । "छिन्नमस्ता के प्रत्येक संदर्भ में नारी शोषण के अनेको रूप सामने आते हैं । इस नारी शोषण की परंपरा के खिलाफ, पुरानी गली-सड़ी व्यवस्था के खिलाफ, अपने समूचे अस्तित्व के साथ संघर्षरत प्रिया ही - नारी शोषण से मुक्ति की सार्थक पहचान है ।

.....

संदर्भ

1. प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय - नारी शोषण और मुक्ति, से संबंधित दिए गए एक व्याख्यान में.

2. प्रभा खेतान - "छिन्नमस्ता", नयी दिल्ली, पटना - राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1993, पृ॰-153.

3. वही, पृ॰-187.

4. पत्रिका - मासिक "हंस", सम्पादक राजेन्द्र यादव, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, अंक - जून 1996 में अरविंद जैन का लेख "छिन्नमस्ता : परंपरा पूंजी और पहचान का आत्मसंघर्ष" पृ॰-36.

5. प्रभा खेतान - "छिन्नमस्ता", नयी दिल्ली, पटना - राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृ॰-188.

6. वही, पृ॰-202.

7. वही, पृ॰-12.

8. वही, पृ॰-203.

9. वही, पृ॰-11.

10. वही, पृ॰-154.

11. वही, पृ॰-124.

12. प्रभा खेतान - "छिन्नमस्ता", नयी दिल्ली, पटना - राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृ॰-154.

13. वही, पृ॰-110.

14. वही, पृ॰-102.

15. वही, पृ॰-60.

16. पत्रिका - मासिक "हंस", सम्पादक राजेन्द्र यादव, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, अंक - सितम्बर 1993, में विद्यानिधि का लेख, "लहुलुहान कदमों की आश्वस्त यात्राएँ" पृ॰-78.

17. वही, पृ॰-79.

18. प्रभा खेतान - "छिन्नमस्ता", नयी दिल्ली, पटना, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 1993, पृ॰-40.

.....

चतुर्थ अध्याय

छिन्नमस्ता का शिल्प-वैशिष्ट्य

1· छिन्नमस्ता के शिल्प-पक्ष को लेकर उठे विवादों का उल्लेख और उनके समाधन का प्रयास

2· छिन्नमस्ता का शिल्प वैशिष्ट्य - फ्लेश बैक, टेकनिक, काव्यात्मक भाषा

3· चरित्रों के माध्यम से कथ्य को संप्रेषित करने का प्रयास

4· मन के अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण

.....

इस उपन्यास का औपन्यासिक शिल्प अत्यन्त प्रौढ़ है, जिसमें प्रभा खेतान की लेखन क्षमता का सम्यक परिचय मिलता है। यद्यपि "छिन्नमस्ता" के रूप पक्ष को लेकर काफी विवाद रहा है। यथा - "प्रभा खेतान की "छिन्नमस्ता" एक स्तर पर कलात्मक अपर्याप्तता के कारण उत्पन्न रचनात्मक असंतोष का पाठकीय अनुभव देने के बावजूद एक महत्वपूर्ण अपवाद है ... । ... पाठकीय प्रतिक्रिया के स्तर पर "छिन्नमस्ता" से गुजरना एक रचनात्मक असंतोष का अनुभव है। प्रिया के अनुभव की गहराई रचना में सतह पर यूं उतरती फिरती है कि उसे गहराई के रूप में पाठक अनुभव ही नहीं कर पाता। ... पाठक के पास सिर्फ रचनात्मक संतोष का, अर्थ के आविष्कार का साक्षात्कार के सुख का ही ऐसा प्रलोभन है जो उसे पुस्तक के पास ले जाता है। "छिन्नमस्ता" पाठक को इसका अवसर नहीं देती। संदर्भों के बीच यहां ऐसी खाली जगह कहीं है ही नहीं जिसे पाठक अपनी कल्पना से भरे बल्कि पंक्ति दर पंक्ति संदर्भ सहित व्याख्या भी साथ-साथ चलती है, मानो लेखिका को डर हो कि पाठक ऐसे की बजाय वैसे समझेगा ही नहीं। इस बड़बोले भाविक व्यवहार ने एक गहन और जटिल मूलपाठ को टीकामंडित करके इतना सरल बना दिया है कि वह लगभग सतही हो गया है और अतिशय प्रत्यक्षता के कारण उसके अनदेखे रह जाने का खतरा पैदा कर दिया है।"[1]

इस संदर्भ में प्रश्न है कि रूप के प्रति ऐसा दुराग्रहपूर्ण पक्षपात क्यों ? अनुभव की गहराई इस उपन्यास में सतह पर कहाँ उतराती फिरती है - भाई द्वारा किए गए बलात्कार में और बड़ी होने पर

उसकी चेष्टाओं में अथवा बचपन में ही भाई बहनों और माँ द्वारा किए गए अपमानों और उपहासपूर्ण उपाधियों में अथवा नरेन्द्र और पूरी व्यवस्था के खिलाफ अनवरत संघर्ष में - यही नहीं इस उपन्यास में कहीं भी बड़बोले भाषिक व्यवहार का आरोप सही नहीं है । इस संदर्भ में प्रिया का यह कथन उल्लेखनीय है - "जिंदगी कितनी रहस्यमय हो जाती है जब उसे आप शब्दों में अभिव्यक्त न कर पाएं ? जबकि आपका सारा प्रयास होता है उसे पारदर्शिता का जामा पहनाने का मगर क्या जिंदगी को यों खोल कर रखा जा सकता है ?"[2]

वैसे कहीं-कहीं तथाकथित बड़बोले भाषिक व्यवहार से अलग प्रतीकात्मक अथवा सांकेतिक भाषा का भी प्रयोग किया गया है । यथा - "उन दिनों बार-बार अपने उस परिवेश के भयानक दबाव में यों लगता था मानो मैं हर रात सीने पर चट्टानों को रखकर सोती थी ।"[3] इसके प्रत्युत्तर में फिलिप का कहना है - "चट्टानों से तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? ... मैं सांकेतिक भाषा ज़रा कम समझ पाता हूँ ।"[4] अर्थात फिलिप जैसे तमाम पाठकों के लिए ऐसी भाषा समझ पाना कठिन होगा, इसे प्रभा खेतान ने ध्यान में रखा है । इसलिए अपनी भाषा और गठन दोनों में उपन्यास सरल और सहज है ।

इस संदर्भ में यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि वह कौन सी समीक्षकीय प्रतिबद्धता है जिसके तहत समीक्षकों को यथार्थ के बेबाक और आर-पार चित्रण में - अनुभव की गहराई रचना में सतह पर उतराती दिखाई पड़ती है ? अर्चना वर्मा ने तो फिर भी

इसका जिक्र किया है और इस उपन्यास के अतिशय प्रत्यदाता पर खेद व्यक्त किया है; परंतु अरविंद जैन, गोपाल राय विद्यानिधि आदि की समीक्षाओं में रूप के इस अतिशय प्रत्यक्षता अथवा उतराती फिरती अनुभव की गहराई के पक्ष अथवा विपक्ष में कुछ भी नहीं कहा गया है । क्योंकि अतिशय प्रत्यक्षता अथवा उतराती फिरती अनुभव की गहराई का संबंध केवल रूप से ही नहीं अंतर्वस्तु से भी है, जिसके अंतर्गत यथार्थ के बेबाक आर-पार चित्रण में पुरुष वर्ग की उन तमाम क्षुद्रताओं, विसंगतियों और कमियों का उल्लेख मिलता है जिससे रू-ब-रू होने में आज भी पुरुष समीक्षकों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।

रूप के संदर्भ में आवश्यक है कि कथा की संरचना उसके पात्रों के चरित्र-चित्रण और भाषा की बनावट - इन तीनों के माध्यम से कथ्य संप्रेषित हो ।

संरचना की दृष्टि से इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है - फ्लैश बैक टेकनीक । छिन्नमस्ता की नायिका "प्रिया" अपने जीवन के अतीत में डूबती उतराती है और उपन्यास आगे बढ़ता रहता है । इस क्रम में घटनाओं का संयोजन अत्यंत कलात्मक रूप से किया गया है । स्मृतियाँ क्रमबद्ध रूप से मानस पटल में नहीं आतीं । अतीत से जुड़ी कभी कोई घटना सामने आती है, कभी कोई । इसी के अंतर्गत नरेन्द्र के साथ हुए झगड़े के दृश्य (पृ॰-10) पहले याद आते हैं फिर बचपन की अनेकों घटनाएँ वह भी अक्रमबद्ध रूप में । अक्रमबद्ध स्मृतियों के सिलसिलेवार विश्लेषण में ही इस उपन्यास का कलात्मक सौन्दर्य

निहित है। इस संदर्भ में प्रिया (अपनी स्मृतियों की अक्रमबद्धता के संबंध में) कहती है - "वर्तमान के झरोखे से बार-बार झांकता हुआ अतीत ? सिलसिलेवार तरीके से नहीं बिल्कुल बेढ़ब अपनी चाल से।"[5]

स्मृतियों के क्रमबद्ध सिलसिलेवार विश्लेषण में वह कलात्मक सौंदर्य नहीं आ पाता जो इसकी अक्रमबद्धता में निहित है। यद्यपि उपन्यास के बीच में स्मृतियों के क्रमबद्ध रेखांकन का प्रयास प्रभा खेतान ने किया है, लेकिन यहाँ स्मृतियों की क्रमबद्धता गड्ड-मड्ड हो गई है। और प्रभाजी के प्रयास की असफलता ही शिल्प के स्तर पर इस उपन्यास की सफलता का सबसे बड़ा राज रहा है। इस संदर्भ में प्रिया और जूडी के वार्तालाप का एक दृश्य देखा जा सकता है।

"प्रिया - अपनी पूरी तस्वीर नहीं बना पाती। कभी सर गायब है तो कभी एक हाथ, कभी लगता है, अंग-प्रत्यंग छितरा रहे हैं, अजीब सा हैल्युसिनेशन।

जूडी - मन में जब घटनाएँ आएँ लिखती जाओ।

प्रिया - पर वह आत्मकथा कैसी होगी ?

जूडी - प्रिया। हम तुम सब साधारण इंसान हैं। क्रमानुसार सजा-सँवारकर तो विशिष्ट व्यक्तियों का जीवन वृतांत लिखा जाता है।

प्रिया - ओह जूडी। तुम्हारे पास मेरे प्रश्नों का उत्तर हमेशा रहता है।"[6]

इस उपन्यास की शैली के संदर्भ में गोपाल राय ने ठीक टिप्पणी की है कि - इस उपन्यास की एक खूबी यह है कि इसमें केन्द्रीय पात्र अपने अतीत को संवेदना के स्तर पर पुन: जीती भी है और उसका तटस्थ ढंग से विश्लेषण भी करती है । इसके लिए एक बेहद सटीक और उपयुक्त शिल्प प्रविधि अपनायी गई है, विमान यात्रा, होटल और अपने अभिन्न मित्र, दम्पति के साथ गुजारे गये पन्द्रह दिनों के विश्राम-अवकाश के दौरान स्वगत चिंतन और संवाद के माध्यम को । इस प्रविधि के द्वारा अतीत के भोगे हुए जीवन का पुन: साक्षात्कार तथा उसका विश्लेषण और नारी सम्बन्धी निष्कर्ष सभी सहज और पैने बन गये हैं । इस संदर्भ में जूडी का कथन उल्लेखनीय है -

"प्रिया ! तुम अपनी डायरी लिखती रहो । औरत आज भी मूक है । उसके आंसुओं को दुनिया देखती है । उसके हिस्टिरिया के दौरे, उसके चीखने-चिल्लाने पर लोग कानों पर हाथ रख लेते हैं ··· उसकी शिकायत भरी निगाहों को देखकर भी पुरुष अनदेखा कर जाता है । मगर शब्दों का अपना इतिहास होता है ··· और यदि वे छप जाएँ तब क्या उनकी यों उपेक्षा करना संभव होगा ?"[7]

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से विचार करें तो सारा उपन्यास प्रिया के जीवन संघर्षों के ताने-बाने से बुना गया है। उसके जीवन का प्रत्येक अंश नारी के जीवन संसार के अनुभवों और आकांक्षाओं को उजागर करता है । "छिन्नमस्ता" की नायिक प्रिया स्वयं कहती है - "मैं अपने पर लिखना चाहती हूँ ··· अपनी आत्मकथा, नहीं ठीक आत्मकथा नहीं ··· क्या कहूँ इसे - आत्म विश्लेषण ?"[8]

प्रिया का जीवन आधुनिक नारी के जीवन संघर्षों का प्रामाणिक दस्तावेज है । प्रिया के चरित्र की सफलता का सबसे बड़ा राज यह है कि उसके व्यक्तित्व में हर स्त्री को कहीं न कहीं अपनी तस्वीर दिखाई देती है । इस संदर्भ में जूडी का कथन उल्लेखनीय है - "जब लिखोगी तब अपनी जैसी हजारों-लाखों के साथ संवाद स्थापित कर पाओगी । तुम्हें क्या पता कि तुम्हारे शब्दों को पढ़कर कौन-कौन अपने घावों को सहलाएगा ? किस औरत की गूँगी जुबान अचानक बोल उठेगी - हाँ, हाँ, यह सच है, बिल्कुल सच है । मेरे साथ भी ऐसा ही घटा है ।"[9]

प्रिया के ससुर की रक्षिता छोटी माँ उनकी बेटी नीना, दाई माँ, विदेशी मित्र जूडी और फिलिप के साथ प्रिया के घनिष्ठ संबंधों की सार्थक अभिव्यक्ति हुई है । ये वे लोग हैं जो प्रिया के संघर्ष में उसका साथ देते हैं, उसकी हिम्मत बढ़ाते हैं । दूसरी ओर प्रिया की माँ, बहनें, भाभियाँ, सास और भाई तथा पति आदि हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसके मार्ग में अवरोध ही पैदा करते हैं । अंततः प्रिया बनावटी रिश्तों के भ्रम से बाहर निकलती है, तथापि वह पूरी तरह इन सबके व्यामोह से मुक्त नहीं हो पाती और सोचती है - "भ्रमों के बाहर एक बार निकल जाओ तो एक खामोश दहशत आपको घेर लेती है । निरन्तर डूबते जाने का भय, नंगी सच्चाईयों का सामना करने में भय, स्वयं के प्रति संशय, अतीत का ऐसा कोई हिस्सा नहीं जो दर्द से टीस न रहा हो । एक कुचला हुआ घायल बचपन, जो समय से कौमार्य की दहलीज लाँघकर असमय आ गया और फिर जीने की अन्धी जिद्द लिए हुए निरन्तर संघर्षरत

एक औरत, जो व्यवस्था से समझौता करना कभी सीख ही नहीं पाती, जो ईमानदारी शब्द से इतनी ग्रसित है कि चाहकर भी रिश्तों की बनावट और कृत्रिमता स्वीकार ही नहीं कर पाती ।"[10]

इस प्रकार हर चरित्र और उसके साथ अपने संबंधों का जिक्र प्रभा खेतान ने अत्यंत ईमानदारी के साथ किया है। तथापि अर्चना वर्मा के अनुसार - "प्रिया के ससुर की रक्षिता छोटी माँ और उनकी बेटी, दाई माँ, विदेशी मित्रों के साथ की गहरी समझदारी हिस्सेदारी आदि अनेक अनुषंग इस कथा के भाव तंत्र के अधिक सार्थक हिस्से बन सकते थे ।"[11] अधिक सार्थक हिस्सा न बन पाने का कारण उन्होंने बड़बोले भाषिक व्यवहार और अतिशय प्रत्यक्षता को माना है ।

प्रश्न उठता है कि उक्त सारे चरित्र लेखिका के विजन को स्पष्ट करने में सहायक हैं या नहीं ? यदि वे सहायक हैं तो इसमें कोई संदेह नहीं कि वे इस कथा के भाव तंत्र के अधिक सार्थक हिस्से हैं ।

इस उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल है । यथा - अशिक्षिता परंतु अत्यंत स्नेही दाई माँ की भाषा बौद्धिक दांव-पेचों और चमक-दमक से दूर मिर्जापुर में बोली जाने वाली सामान्य बोलचाल की भाषा है - "सुन बिटिया । हमार कहा मान और जिंदगी में ई सब बात कभी किसी से जिन कहियो । आपन पीत परमेसर से भी नाहीं । अउर सब समय हमार साथ रहो । ना बिटिया हम तोहके छोड़कर कहीं नहीं जाउब ।"[12] प्रिया की अम्मा की बोलचाल में मारवाड़ी घरानों में बोले जाने वाले शब्दों का प्रयोग अधिक किया

गया है । यथा - "चुप रह मरणजोगी" ··· या "राधली राँड तो टिके ही नहीं और तुम लोगों को टावरी (बच्चे) चैन नहीं लेने देते ।"[13] गांगुली बाबू के वार्तालाप में बंगला का पुट विद्यमान है । यथा - "एकदोम आचार । भालो खेलाम । ··· कठोर लाइडू ··· मा गो पेट गोड़ गोड़ कोरछे ।"[14] इसी प्रकार प्रिया के साथ नरेन्द्र जूडी, फिलिप और नीना आदि के वार्तालाप में अंग्रेजी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है ।

इसी प्रकार भाषिक रचाव की दृष्टि से भी इस उपन्यास ने अपनी अलग पहचान बनायी है । इस संदर्भ में प्रो॰ मैनेजर पाण्डेय के अनुसार - "कथा कहने के ढंग में सोचने का ढंग भी निहित होता है, उसके माध्यम से स्त्री अपने स्वत्व और आत्मसम्मान की प्रतिष्ठा करती है । सामाजिक स्थिति और मूल्य चेतना के अंतर के कारण पुरुष कथाकारों के उपन्यासों में स्त्री को जिस रूप में देखा और चित्रित किया जाता है उससे भिन्न दृष्टिकोण स्त्री कथाकारों के उपन्यासों में मिल सकता है ।"[15]

मन के अंतर्द्वन्द्वों का चित्रण भी लेखिका ने अत्यन्त सूक्ष्मता से और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है । विचारों के उतार-चढ़ाव के अंकन में उन्हें सफलता मिली है । प्रिया की माँ जिसने कभी भी अपने चौथे नम्बर की बेटी को प्यार नहीं किया जिसके प्रति आक्रोश की अभिव्यक्ति उपन्यास में लगभग सर्वत्र व्याप्त है, उसके प्रति भी कभी-कभी सहानुभूति की गहरी रेखाएँ प्रिया के मन में खिंचती हैं, जिसकी सटीक अभिव्यक्ति उसने यत्र-तत्र किया है । यथा - "लेकिन आज इस उम्र में मैं क्यों अम्मा की चिंता की लड़ियाँ गिन रही हूँ ?"[16]

... "अम्मा, अम्मा प्लीज आप देवी होना छोड़ दीजिए । एक साधारण औरत की तरह जीवन में थोड़ा तो सुख भोगिए ।"[17]
" ... और अम्मा, क्यों तुम हमेशा ... अपनी आहुति देती रहती हो ।"[18]

इसी प्रकार उपन्यास में प्रिया के परस्पर विरोधी मनोभावों का भी अत्यंत सूक्ष्म अंकन हुआ है । निस्संदेह इन परस्परविरोधी मनोभावों का उपजीव्य परिस्थितियाँ ही हैं । यथा - "कॉलेज में पढ़ते हुए कोई भी पुरुष मेरी आँखों में नहीं उतर पाया था । मुझे अपने औरतपने से चिढ़ थी ।"[19] इसके तुरंत बाद अगले पैराग्राफ में - "लेकिन सच में अच्छा लगा था एक युवा शरीर का आलिंगन, उत्तेजित गर्म साँसें, गहरे चुंबन, शरीर में होती हुई मीठी सिहरन ।"[20] अरविंद जैन ने प्रिया के अंतर्द्वन्द्व का कारण बताते हुए कहा है - "प्रिया सिर्फ स्त्री देह ही नहीं है, बल्कि दिमाग भी है, दिल और दिमाग दो अलग-अलग दिशाओं में महसूसते सोचते विचारते समझते रहते हैं जिसके परिणामस्वरूप अंतर्द्वन्द्व कभी समाप्त ही नहीं होता ।"[21] यहाँ दिल और दिमाग की अपेक्षा मानवमन के मनभावों की परस्परविरोधी प्रकृति की अहम् भूमिका है । नितांत अपढ़ गँवार व्यक्ति में भी अरविंद जैन ने प्रिया के हवाले से ही उल्लेख किया है कि देकार्त, कांट, जान स्टुअर्ट, मिल, हीमेल वैडले, विटकेनस्टाइन और मार्क्स का दर्शन पढ़ने के बाद उसकी चेतना का धरातल बदलता जा रहा था । परस्परविरोधी मनोभावों के परिणामस्वरूप ऐसे ही कर्म अथवा वचन देखे जा सकते हैं ।

उपन्यास की भाषा यत्र-तत्र काव्यात्मक बन पड़ी है । प्रभा खेतान स्वयं कवयित्री है, अत: ऐसी भाषा अनपेक्षित नहीं है । गोपाल राय ने कहा है कि उपन्यास की भाषा उसकी मूल संवेदना का बराबर साथ देती दिखाई देती है, और अनेकत्र कविता की भाषा के निकट पहुंच जाती है । यह भी इस उपन्यास की सफलता का एक कारण है ।

काव्यात्मक भाषा का प्रयोग प्रकृति चित्रण के संदर्भ में किया गया है, जहाँ प्रिया स्मृतियों के घेरे से निकल कर वर्तमान में जीती है । डूयब्रवनिक के होटल सेतीस्टेफा के इर्द-गिर्द के सारे वातावरण का अंकन मोहक शब्दावली में किया गया है । प्रिया के संघर्षमय जीवन के आख्यान में मानो ये स्थल विश्राम अथवा क्षण भर सुस्ता लेने के लिए बनाए गए हों । यथा - "उतरती हुई पीली शाम नीली समुद्री लहरों के साथ घुलकर हरी होती जा रही है । सितारे कैसे चटख-चटख कर खिलते जा रहे हैं । दूर नारंगी रोशनी में डूबती हुई लहरें ।"[22] साथ ही - "ताजा खिले गुलाब की तरह भीगी हर मकान, हर पेड़ और हर पत्ता किनारे पड़ी गिट्टियाँ, सब मानो अभी-अभी ताजा नहाकर निकले हों ।"[23]

परंतु कभी-कभी ये स्थल कहानी की निरंतरता में अवरोधक से भी प्रतीत होते हैं और मन वहाँ से फिसल कर प्रिया के आत्म-कथात्मक प्रसंगों में रम जाता है ।

.....

संदर्भ

1. मासिक "हंस", अंक - सितम्बर 1993, प्रकाशक - अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰ में अर्चना वर्मा का लेख "वेदना की व्यस्क परिणति : छिन्नमस्ता" से उद्धृत, पृ॰-78.

2. "छिन्नमस्ता" लेखिका - प्रभा खेतान, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 1993, पृ॰-107.

3. वही, पृ॰-209.

4. वही, पृ॰-209.

5. वही, पृ॰-22.

6. वही, पृ॰-182.

7. वही, पृ॰-23.

8. वही, पृ॰-183.

9. वही, पृ॰-23.

10. प्रभा खेतान - "छिन्नमस्ता" पत्रिका "हंस" में प्रकाशित, अंक - अप्रैल 1991, पृ॰-66.

11. मासिक "हंस", अंक - सितम्बर 1993, प्रकाशक अक्षर प्रकाशन प्रा॰लि॰ में अर्चना वर्मा का लेख "वेदना की व्यस्क परिणति : छिन्नमस्ता" से उद्धृत, पृ॰-78.

12· छिन्नमस्ता - लेखिका-प्रभा खेतान, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण, 1993, पृ·-18.

13· वही, पृ·-46.

14· वही, पृ·-95.

15· साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका" लेखक - डॉ· मैनेजर पाण्डेय, प्रकाशक - हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1989, पृ·-250.

16· छिन्नमस्ता - लेखिका - प्रभा खेतान, प्रकाशक राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 1993, पृ·-43.

17· वही, पृ·-67.

18· वही, पृ·-68.

19· वही, पृ·-109.

20· वही, पृ·-109.

21· मासिक "हंस", प्रकाशक अक्षर प्रकाशन प्रा·लि· नई दिल्ली, अंक - जून 1996 में अरविंद जैन का लेख "छिन्नमस्ता" : परम्परा पूंजी और पहचान का आत्मसंघर्ष से उद्धृत, पृ·-35.

22· छिन्नमस्ता - लेखिका - प्रभा खेतान, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 1993, पृ·-34-35.

23· वही, पृ·-90.

.....

उपसंहार

"अनन्त काल से नारी की केवल शोभा और प्रदर्शन की वस्तु के रूप में चर्चा होती रही है । जब भी उसने इस घेरे से बाहर आने की कोशिश की, उसे उपहास और व्यंग्य का पात्र बनना पड़ा । भारत में नारी की स्थिति विरोधाभासपूर्ण रही है । परंपरा से नारी को शक्ति का रूप माना गया है, किंतु आम बोलचाल में उसे अबला कहा जाता है ।"[1]

परंतु शिक्षा और जागरूकता के परिणामस्वरूप नारी की स्थिति में शनैः शनैः सुधार हो रहा है । फलस्वरूप परंपरा और रीतिरिवाज़ों के बंधन को तोड़कर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की स्थापना के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री आज साहित्य का प्रमुख विषय बन चुकी है । मंजुला भगत, राजी सेठ, उषा प्रियंवदा, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, प्रभा खेतान आदि के उपन्यासों का प्रमुख विषय अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए संघर्ष करती हुई स्त्री है । साहित्यिक दृष्टि से इनकी विशिष्टता यह है कि इसकी नायिकाएँ स्त्री की प्रचारित और प्रचलित छवि को तोड़ती हैं । कई बार इस क्रम में उन्हें स्वयं भी टूट जाना पड़ता है । स्त्री की सबसे बड़ी इच्छा अपने आप को व्यक्ति अथवा मनुष्य के रूप में प्रतिष्ठित करने की है । उसे माँ, बेटी, पत्नी, बहन से होते हुए देवी, दानवी, कुलटा, रखैल तक का दर्जा दिया गया, परन्तु इन सब से परे एक स्वतन्त्र व्यक्ति का नहीं । इस संदर्भ में मैत्रेयी पुष्पा का कथन उल्लेखनीय है - "हम न तो

देवी हैं, न ही राक्षसी, न साध्वी, न कुलटा, हम जो भी हैं उसी रूप में देखा जाए । पुरुष के नजरिये से नहीं बल्कि मनुष्य के नजरिये से । 21वीं सदी में औरत स्वयं तय करेगी कि उसे अपना जीवन कैसे चलाना है । अपने शरीर को किसे सौंपना है, माँ बनना है या इस महिमामय गरिमा के मिथ से वंचित रहकर भी जिया जा सकता है, लड़की पैदा हो या लड़का, एक हो या दो । ये या ऐसी सारी बातें वर्जनाओं और भय से मुक्त होकर स्वयं तय करेगी ।"[2]

इस क्रम में सामाजिक रूढ़ियों, मान्यताओं और वर्जनाओं के बीच आत्म-संघर्ष करती नारी का प्रतिबिम्ब सुरेन्द्र वर्मा के "मुझे चाँद चाहिए" और मैत्रेयी पुष्पा के "इदन्नमम" में देखा जा सकता है । प्रभा खेतान के अनुसार - "दोनों उपन्यासों के नायिकाओं में समानता यह है कि दोनों में जीवट है, साहस है, महत्वाकांक्षा है, गजब का जुझारू व्यक्तित्व है और दोनों प्रेम में आकंठ डूबी मगर असफल प्रेम की शिकार हैं । अतः अकेली अपने पैरों पर खड़ी हैं, दोनों के ही मन में जीवन के प्रति संबंधों के प्रति मानवीय मूल्यों के प्रति गहरी संवेदना और लगाव है ।"[3]

नारी शोषण और उससे मुक्ति की कामना वाले नायिका प्रधान समकालीन उपन्यासों में यह भी ध्यान रखा गया है कि पुरुष वर्चस्व से मुक्ति की कामना की अनिवार्य शर्त आर्थिक रूप से आत्म-निर्भर होना अवश्य है, परन्तु सिर्फ इतना ही पर्याप्त नहीं है । आर्थिक आत्म-निर्भरता के साथ-साथ सामाजिक स्वतन्त्रता भी आवश्यक है ।अर्थात् स्त्रियों को भी तमाम भूमिकाओं से परे पुरुष

के समान एक व्यक्ति मानना‖ । 50-60 के दशक में यह समझा जाता था कि आर्थिक आत्मनिर्भरता ही पुरुष वर्चस्व से मुक्ति का एकमात्र मार्ग है । परन्तु समय के साथ-साथ यह महसूस किया गया कि हमारे सामाजिक-पारिवारिक बनावट में ही कुछ ऐसा है कि आर्थिक स्वतन्त्रता के बावजूद स्त्रियों को पुरुषों के समकक्ष नहीं माना जाता । इस संदर्भ में उषा प्रियंवदा के "पचपन खम्भे लाल दीवारें" ‖1961‖ की नायिका का उल्लेख किया जा सकता है । सुषमा नामक एक मध्यवर्गीय नारी को केन्द्र में रखकर उषा प्रियंवदा ने आधुनिक नारी की मानसिक यंत्रणा का सजीव अंकन किया है । सुषमा कॉलेज में लेक्चरर है, होस्टल की वार्डन है, लेकिन फिर भी अकेलापन, संत्रास ऊब और घुटन की शिकार है । यहाँ स्त्रियों से जुड़ी हुई परम्परागत रूढ़ियाँ और मान्यताएं ही हैं जो सुषमा के मानसिक यंत्रणा का कारण बनती हैं । सुषमा जैसी आत्मनिर्भर स्त्रियों को मुक्ति चाहिए, जान-लेवा परम्पराओं और रीतिरिवाजों के बंधन से, रूढ़ियों से ।

सदियों से बर्बर रीतिरिवाजों और परम्पराओं में जकड़ी नारी अपनी मुक्ति के लिए संघर्षरत है । इस क्रम में प्रश्न उठता है कि नारी-चेतना अथवा नारी-मुक्ति है क्या ? मृदुला गर्ग के अनुसार - "चेतना का संबंध अपने प्रति सजग होना है, विभिन्न परिप्रेक्ष्यों में रखकर अपनी स्थिति का मूल्यांकन करना है । चेतना के सहारे व्यक्ति निजी जीवन दृष्टि से प्रेरित होकर इतिहास, संस्कृति और मानवीय संबंधों को पुनः विश्लेषित करता है । इस प्रकार जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े वह नारी चेतना है ।"[4]

स्त्री को महज स्त्री होने के कारण जिस दलन, शोषण और विषमता को झेलना पड़ता है, उससे मुक्ति के लिए संघर्ष करना तथा स्वयं के प्रति जागरूक होना ही नारी चेतना है । प्रभा खेतान ने लिखा है - "स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है ... जरूरी नहीं कि दो स्वतन्त्र व्यक्तियों को बराबरी का ही अधिकार मिले, ऐसे में क्या बराबरी के अधिकार की माँग गलत है ? नाजायज है ? क्या केवल स्वतन्त्र होकर ही हम स्त्रियाँ संतुष्ट हो जायें ? यहाँ एक प्रश्न और ? आप अधिकार देने वाले हैं कौन ? आपको किसने कुर्सी पर बैठाया ? आप श्रेष्ठ कब तक हैं ? तभी तक न, जब तक हम सर झुकाये अपनी हीन स्थिति को स्वीकारते हैं ... या जब तक आपके द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन नहीं करतीं, तभी तक न ?"[5]

इन्हीं सवालों और नारी शोषण तथा उससे मुक्ति के लिए अनवरत संघर्ष के आलोक में छिन्नमस्ता को देखा जा सकता है । नारी आज जिस संक्रमण की स्थिति से गुजर रही है उसका सफल प्रतिनिधित्व छिन्नमस्ता की नायिका ने किया है । परम्पराएँ और रीतिरिवाज जहाँ परम्परागत मानस को अपनी ओर खींचते हैं वहीं मुक्ति की कामना उसे आकर्षित भी करती है । प्रिया के व्यक्तित्व में ये दोनों बातें विद्यमान हैं । प्रारंभ में विवाह की संस्था में ही सुरक्षा है, यह मानकर प्रिया पूरे प्रयत्न से पति के साथ ही रहना चाहती है । प्रिया के इस प्रयत्न में प्रश्न यह नहीं है कि उसका पति नरेन्द्र कितना क्रूर अथवा सभ्य है और प्रिया के लिए उसका साथ छोड़ना कितना नैतिक अथवा अनैतिक है । बल्कि प्रश्न है कि

प्रिया घर क्यों नहीं छोड़ना चाहती ? नरेन्द्र अथवा संजू से बंधे होने के कारण या समाज के डर से अथवा सूझ-बूझ के कारण ? प्रिया विवाह अथवा समाज की व्यवस्था में ही सुरक्षा खोजती है, इसलिए प्रारम्भ में घर नहीं छोड़ती । परंतु बाद में विवाह को ही सुरक्षा मानकर उससे समझौता करने की स्थिति में उसमें जो हताशा और कुंठा पैदा होती है, उससे उबरने के लिए, स्वतन्त्र व्यक्तित्व के प्रतिष्ठापन के लिए प्रिया संघर्ष करती है, अनवरत कठिन संघर्ष । वस्तुत: यही आज की संघर्षरत नारी की सच्ची तस्वीर है । प्रिया के माध्यम से लेखिका ने यह संदेश देना चाहा है कि जब तक कोई भी स्त्री स्वयं जागृत नहीं होगी, अपनी स्वतन्त्रता के लिए स्वयं संघर्ष नहीं करेगी तब तक पुरुषवर्चस्ववादी समाज में उसकी स्थिति अन्या अथवा भोग्या की ही रहेगी । इस संबंध में महादेवी वर्मा ने श्रृंखला की कड़ियों में लिखा है कि भारतीय नारी जिस दिन भी अपने सम्पूर्ण प्राणवेता से जाग सके उस दिन उसकी गति रोकना किसी के लिए संभव नहीं । उसके अधिकारों के संबंध में यह सत्य है कि वे भिक्षावृत्ति से न मिले हैं न मिलेंगे, क्योंकि उनकी स्थिति आदान-प्रदान योग्य वस्तुओं से भिन्न है ।

न केवल "छिन्नमस्ता" में बल्कि प्रभा खेतान की अन्य रचनाओं में भी नारी शोषण और उससे मुक्ति की कामना अभिव्यक्त हुई है जिसका उल्लेख द्वितीय अध्याय में किया गया है ।

.....

संदर्भ

1. इंदिरा गाँधी का अंतर्राष्ट्रीय महिला वर्ष - 1975, के अवसर पर प्रसारित संदेश ।

2. मासिक "हंस", अंक - जनवरी 1997 में मैत्रेयी पुष्पा का कथन, पृ॰-83.

3. मासिक "हंस", अंक - जून 1994 में प्रभा खेतान का लेख "दो उपन्यास और नारी का आत्मसंघर्ष" पृ॰-64.

4. मासिक "हंस", अंक - मई 1993 में मृदुला गर्ग का लेख आधुनिक हिन्दी कहानी : नारी चेतना, मर्द आलोचना, पृ॰-34.

5. मासिक "हंस", अंक - नवम्बर-दिसम्बर 1994 में प्रभा खेतान का लेख बाहर और भीतर की दुनिया.

.....

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

आधार ग्रंथ

1. अपरिचित उजाले - प्रभा खेतान, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1981.

2. अहल्या - प्रभा खेतान, दिल्ली, सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण 1988.

3. अग्निसंभवा - प्रभा खेतान, हंस, अंक - अप्रैल 1992. दिल्ली, अक्षर प्रकाशन.

4. आओ पे पे घर चलें - प्रभा खेतान, "हंस", अंक - अप्रैल 1989, दिल्ली, अक्षर प्रकाशन.

5. एक और आकाश की खोज में - ग्रीक चर्च रोड, कलकत्ता, अप्रस्तुत प्रकाशन, प्रथम संस्करण - 1985.

6. कृष्ण धर्मा मैं - प्रभा खेतान, तनसुक लेन, कलकत्ता, प्रकाशक स्वर समवेत, प्रथम संस्करण 1986.

7. छिन्नमस्ता - प्रभा खेतान, प्रकाशक - राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पटना, प्रथम संस्करण 1993.

8. तालाबंदी - प्रभा खेतान, दिल्ली सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण, 1991.

9. साँकलों में कैद क्षितिज (अनुवादक - प्रभा खेतान) दिल्ली, सरस्वती विहार, प्रथम संस्करण 1986.

10. सीमोन द बोउवार - द सेकिन्ड सेक्स, अनुवाद - प्रभा खेतान, प्रकाशक - दिल्ली हिन्द पॉकेट बुक्स.

11. सीढ़ियाँ चढ़ती हुई मैं - प्रभा खेतान, दिल्ली, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1982.

12. हुस्नाबानो और अन्य कविताएँ - प्रभा खेतान, तनसुकलेन प्रकाशक, स्वर समवेत, प्रथम संस्करण 1987.

सहायक पुस्तकें

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास : दार्शनिक चेतना, डॉ. श्रीराम शर्मा, राजेश प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992.

2. औरत के हक में - तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994.

3. औरत होने की सज़ा - अरविंद जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्करण 1994.

4. नष्ट लड़की : नष्ट गद्य - तसलीमा नसरीन, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1995.

5· नारी शोषण आइने और आयाम - आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1982.

6· नारी नवजागरण और महिला उपन्यासकारों की स्त्री पुरुष परिकल्पना - उर्मिला प्रकाश, चिन्ता प्रकाशन, पिलानी, राजस्थान.

7· भारतीय नारी : दशा-दिशा - आशारानी व्होरा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983.

8· विवाह की मुसीबतें - रामधारी सिंह दिनकर, हिन्दी बुक सेन्टर, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1975.

9· स्त्री-पुरुष : कुछ पुनर्विचार - राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992.

10· स्त्री के लिए जगह - राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1994.

11· हिन्दी उपन्यास साहित्य में दाम्पत्य चित्रण - डॉ· उर्मिला भटनागर, अर्चना प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 1989.

12· हिन्दी उपन्यासों की प्रवृत्तियों एवं दिशाओं के नये आयाम - डॉ· सुरेश सिन्हा, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1982.

13· हिन्दी का गद्य साहित्य - डॉ· रामचन्द्र तिवारी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, नई दिल्ली, प्र·सं·-1992.

पत्रिकाएँ

1. कल्याण, नारी अंक (बाईसवें वर्ष का विशेषांक), प्रकाशन, गोरखपुर, गीताप्रेस.

2. नारी-संवाद, सम्पादक - डॉ. रेणु दीवान, अंक-14, अक्टूबर-नवम्बर-दिसम्बर, 1994.

3. धर्मयुग - सम्पादक - विश्वनाथ सचदेव, नारी अंक, 1-15 मार्च, 1995.

4. हंस - औरत : उत्तर कथा, प्रकाशक - अक्षर प्रकाशन प्रा.लि. नई दिल्ली, अंक - नवम्बर-दिसम्बर 1994.

.....